* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

भगवती गायत्री

मार्कण्डेय मुनिको बालमुकुन्दके दर्शन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
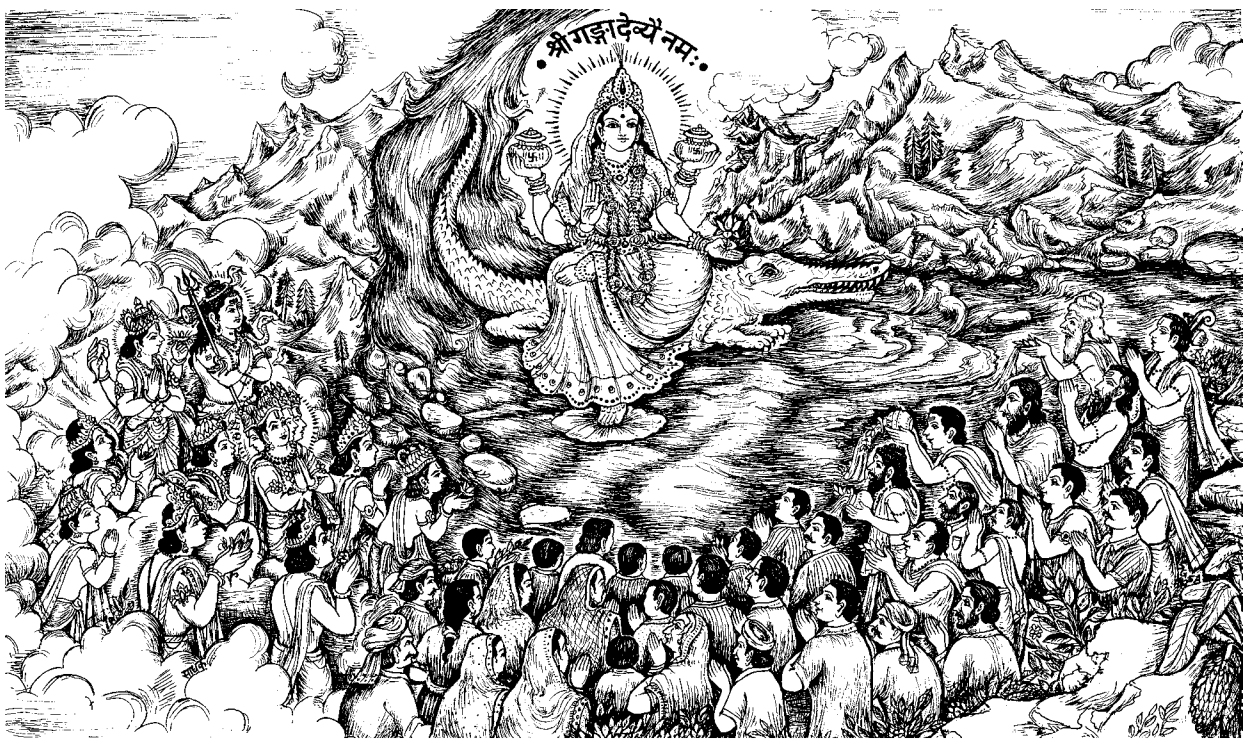
कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०

गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, जून २०१६ ई०

संख्या ६

पूर्ण संख्या १०७५

प्रलयपयोधिमें मार्कण्डेयजीको भगवद्विग्रहका दर्शन

महामुनि मार्कण्डेयजीकी अनन्य भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने उनसे वर माँगनेको कहा। मुनिने कहा—हे प्रभो! आपने कृपा करके अपने मनोहर स्वरूपका दर्शन कराया है, फिर भी आपकी आज्ञाके अनुसार मैं आपकी मायाका दर्शन करना चाहता हूँ। तब 'तथास्तु' कहकर भगवान् बदरीवनको चले गये। एक दिन मार्कण्डेयजी पुष्पभद्रा नदीके तटपर भगवान्की उपासनामें तन्मय थे। उसी समय एकाएक उनके समक्ष प्रलयकालका दृश्य उपस्थित हो गया। भगवान्की मायाके प्रभावसे उस प्रलयकालीन समुद्रमें भटकते-भटकते उन्हें करोड़ों वर्ष बीत गये और—

एकार्णवकी उस अगाध जलराशि-बीच वटबृक्ष विशाल,
दीख पड़ा उसकी शाखापर बिछा पलंग एक तत्काल।
उसपर रहा विराज एक था कमलनेत्र अति सुन्दर बाल,
देख प्रफुल्ल कमल-मुख मुनि मार्कण्डेय हो गये चकित, निहाल॥ [पद-रत्नाकर]

—अकस्मात् एक दिन उन्हें उसी प्रलय-पयोधिके मध्य एक विशाल वटवृक्ष दिखायी पड़ा। उस वटवृक्षकी एक शाखापर एक सुन्दर-सा पलंग बिछा हुआ था। उस पलंगपर कमल-जैसे नेत्रवाला एक सुन्दर बालक विराज रहा था। उसके प्रफुल्लित कमल-जैसे मुखको देखकर मार्कण्डेय मुनि विस्मित तथा सफल-मनोरथ हो गये।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, जून २०१६ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹२००
सजिल्द ₹२२०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क } वार्षिक US$ 45 (₹2700) पंचवर्षीय US$ 225 (₹13500) { Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—सच्चा यज्ञ वही है, जो भगवान्को प्रसन्न करनेवाला और जगत्का कल्याण करनेवाला हो।

सच्चा तप वही है, जो धर्मके लिये प्राणोंकी बलि चढ़ानेको प्रस्तुत कर दे।

सच्चा दान वही है, जो बिना फल चाहे दिया जाय और जिसमें यथार्थ त्याग हो।

सच्चा जीवन वही है, जो केवल प्रभुकी सेवाके लिये लोकहितमें लगा हो।

सच्चा मरण वही है, जो मौतको सदाके लिये मार दे।

सच्चा भोग वही है, जो भोक्तापनको भगा दे और सबके भोक्ता भगवान्से मिला दे।

सच्चा त्याग वही है, जो त्यागकी स्मृतिका भी त्याग करा दे।

सच्चा वैराग्य वही है, जो सबको मनसे निकाल दे और प्रभु-सेवाके लिये एकान्तमें तैयार रहे।

सच्चा विश्वास वही है, जो विपत्ति और विनाशमें भी प्रभुकी कृपाके दर्शन कराता रहे।

सच्चा स्मरण वही है, जो बिना हुए कभी रहे ही नहीं।

याद रखो—सच्चा भजन वही है, जो भजनके लिये ही नित्य-निरन्तर होता रहे।

सच्चा प्रेम वही है, जो गुण और कीर्तिसे हीन प्रेमास्पदमें भी बढ़ता ही रहे।

सच्चा सत्य वही है, जो कभी मिटे नहीं और भय तथा हानिकी सम्भावनामें ही प्रकट रहे।

सच्चा ज्ञान वही है, जो अनेकमें एक, अखण्ड और अनन्त नित्य सत्ताके दर्शन करा दे।

सच्चा योग वही है, जो जीवका नित्य-सत्य-चिदानन्दरूप भगवान्से नित्य संयोग करा दे।

सच्चा हित वही है, जो सर्वहितमय प्रभुसे मिला दे।

सच्चा कल्याण वही है, जो सारे अकल्याणोंको खाकर अपना एकछत्र प्रभुत्व स्थापित कर दे।

सच्चा रस वही है, जो सब रसोंको प्राण देनेवाला हो और नित्य एकरस बना रहे।

सच्चा कर्म वही है, जो भगवान्की कल्याणमयी लीलाका अंग बन जाय।

सच्चा धर्म वही है, जो सब धर्मोंके परम आश्रयरूप भगवच्छरणागतिमें पहुँचा दे।

याद रखो—सच्चा धन वही है, जो नित्य प्रभुकी सेवामें ही लगता रहे।

सच्चा तन वही है, जो विश्वरूप प्रभुकी सेवामें ही नियुक्त रहे।

सच्चा मन वही है, जो सदा प्रभुके मनका ही अनुसरण करे।

सच्चा मित्र वही है, जो कुपथसे हटाकर सुपथमें लगा दे और विपत्तिमें विशेष प्रेम करे।

सच्चा मन्त्र वही है, जो प्रभुको तुरंत मिला दे।

सच्चा मनुष्यत्व वही है, जो पशुत्व-पिशाचत्वकी ओर न जाकर भगवान्की ओर आगे बढ़े!

सच्चा बन्धुत्व वही है, जो विपत्ति और असम्मानके समय साथ न छोड़े।

सच्ची इच्छा वही है, जो प्रभु-मिलनकी इच्छाके अतिरिक्त सारी इच्छाओंका नाश करनेवाली हो।

सच्ची सेवा वही है, जो परमसेव्य प्रभुके मनमें भी सेवाका लोभ पैदा कर दे।

सच्ची कमाई वही है, जो अखण्ड और अटूट रहे।

याद रखो—सच्ची महिमा वही है, जो महिमामय प्रभुकी महिमा बढ़ानेवाली हो।

सच्ची वासना वही है, जो प्रभुमें प्रेमकी वासना उत्पन्न कर दे।

सच्ची श्रद्धा वही है, जो बड़े-बड़े तूफानोंमें भी हिले नहीं।

सच्ची भक्ति वही है, जो भक्तिके लिये ही की जाय और भगवान्में भक्तसे मिलनकी उत्कण्ठा पैदा कर दे।

सच्ची जिज्ञासा वही है, जो तत्त्व-मन्दिरतक पहुँचे बिना रुके ही नहीं।

सच्ची निष्ठा वही है, जो सदा एक-सी और एक-मुखी रहे।

सच्ची शूरता वही है, जो धर्म, देश और असहायोंकी रक्षामें नियुक्त करे।

सच्ची शक्ति वही है, जो प्रभुकी कृपाशक्तिको आकर्षित कर सके।

सच्ची मुक्ति वही है, जो मुक्तको मुक्तिके ज्ञानसे भी मुक्त कर दे।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

भगवती गायत्री

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥

मोती, मूँगा, स्वर्ण, नील और धवल आभावाले [पाँच] मुखों, तीन नेत्रों तथा चन्द्रकलायुक्त रत्नमुकुटको धारण करनेवाली, चौबीस अक्षरोंसे विभूषित और हाथोंमें वरद-अभयमुद्रा, अंकुश, चाबुक, शुभ्र कपाल, रज्जु, शंख, चक्र तथा दो कमलपुष्प धारण करनेवाली भगवती गायत्रीका मैं ध्यान करता हूँ।

द्विजातिमात्रकी आराध्या भगवती गायत्रीकी महिमा अनन्त है। सत्ययुगसे लेकर अबतक लगातार भगवती गायत्रीकी आराधनासे भक्तगण मनोवांछित सिद्धिके साथ मुक्ति भी सहज ही प्राप्त करते आ रहे हैं। सम्पूर्ण वेदोंने गायत्रीकी उपासनाको ही नित्य कहा है। इसीलिये द्विजातिमात्रका कर्तव्य है कि वे निरन्तर गायत्रीके जप और उनके चरण-कमलोंकी उपासनामें संलग्न रहें।

एक समयकी बात है, इन्द्रने पन्द्रह वर्षोंतक जल बरसाना बन्द कर दिया। इस अनावृष्टिके कारण अकाल पड़ गया। घर-घरमें लोग भूख-प्याससे व्यथित होकर प्राण गँवाने लगे। सभी मानव क्षुधाकी ज्वालासे संतप्त होकर एक-दूसरेको खानेके लिये दौड़ते थे। उस समय बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह विचार किया कि ‘इस समय महर्षि गौतमजी तपस्याके सबसे बड़े धनी हैं। वही हमलोगोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। गायत्रीकी उपासनाके बलपर आज भी उनका आश्रम अकालसे सुरक्षित है, अतः हमलोगोंको उन्हींकी शरणमें चलना चाहिये।’

इस प्रकार विचार करके समस्त ब्राह्मण महर्षि गौतमके आश्रमपर गये और विनयपूर्वक उन्हें अपने कष्टोंसे अवगत कराया। गौतमजीने उन ब्राह्मणोंको अभय प्रदान किया और अपने आश्रममें रहनेके लिये आश्रय प्रदान किया। ब्राह्मणोंको आश्वासन देकर महर्षि गौतम भगवती गायत्रीकी स्तुति करते हुए प्रार्थना करने लगे—‘देवि! तुम ही महाविद्या, वेदमाता और परात्परस्वरूपिणी हो। स्वाहा और स्वधारूपसे शोभा पानेवाली तथा सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेमें कुशल तुम देवीको मेरा कोटिशः प्रणाम है। तुम भक्तोंके लिये कल्पलता और तीनों अवस्थाओंकी परम साक्षिणी हो। तुम्हारा स्वरूप तुरीयावस्थासे अतीत है। सूर्यमण्डलमें तुम्हारा निवास है। प्रातःकाल तुम बालसूर्यके समान रक्तवर्णवाली कुमारी, मध्याह्नकालमें श्रेष्ठ युवती और सायंकालमें वृद्धाके रूपमें विराजती हो। सम्पूर्ण प्राणियोंका उद्धार करनेवाली देवि! मैं तुम्हें बार-बार प्रणाम करता हूँ। तुम शीघ्र दर्शन देकर मेरे यहाँ अतिथिरूपमें पधारे ब्राह्मणोंका संकट निवारण करो।’

इस प्रकार महर्षि गौतमकी स्तुति सुनकर भगवती गायत्रीने प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिया। उन्होंने गौतमको एक पूर्णपात्र दिया। भगवतीने उनसे कहा—‘मुने! तुम्हें जिस भी वस्तुकी आवश्यकता होगी, मेरा यह पात्र तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण कर देगा।’ ऐसा कहकर भगवती गायत्री वहीं अन्तर्धान हो गयीं।’

भगवतीके द्वारा दिये गये पात्रसे महर्षि गौतमके पास अन्नादि पदार्थ, फल, रेशमी वस्त्र, यज्ञ-सामग्री आदिके पर्वतोंके समान ढेर लग गये। मुनिवर गौतम जिस वस्तुकी इच्छा करते थे, वे सभी पदार्थ देवी गायत्रीके पूर्णपात्रसे प्राप्त हो जाते थे। मुनिवर गौतमने सम्पूर्ण मुनियों एवं ब्राह्मणोंको बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य, वस्त्र, आभूषण आदि समर्पित किये। सभी लोग एकत्रित होकर मुनिवर गौतमकी आज्ञासे यज्ञ करने लगे। स्वर्गकी समानता रखनेवाला गौतमजीका वह आश्रम अक्षय अन्न-क्षेत्र बन गया। वहाँ उपस्थित मुनियोंकी स्त्रियाँ दिव्य वस्त्राभूषणादिसे अलंकृत होनेके कारण देवांगनाओंके समान दिखायी देने लगीं। भगवती गायत्रीकी कृपासे मुनिवर गौतम सभी लोगोंके लिये भरण-पोषणकी व्यवस्था करते रहे। उन्होंने भगवती गायत्रीकी आराधनाके लिये एक श्रेष्ठ स्थानका निर्माण करवा दिया। ब्राह्मण तथा मुनिलोग वहाँ भगवतीकी नित्य आराधना करते थे। कुछ दिनोंके बाद अकालका समय समाप्त हो गया। भगवतीके कृपा-प्रसादसे मुनिवर गौतमका यश दसों दिशाओंमें फैल गया।

परमात्माके आनन्दमय स्वरूपका ध्यान

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एकान्त और पवित्र देशमें स्थिरतासे सुखपूर्वक आसन लगाकर बैठे और परमात्माका ध्यान करे। संसारमें ध्यानके समान श्रेष्ठ कोई भी साधन नहीं है। भगवान् कहते हैं—

सङ्कल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

(गीता ६। २४-२५)

'संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको नि:शेषरूपसे (सर्वथा) त्यागकर और मनके द्वारा इन्द्रियोंके समुदायको सभी ओरसे भलीभाँति रोककर क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।'

परमात्माका स्वरूप है—'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' (तैत्ति० २। १। १) अर्थात् 'वह ब्रह्म सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है।' वह परमात्मा चेतन है। यह सम्पूर्ण संसार उस चेतनके संकल्पमें है। परमात्मा यदि संसारके संकल्पका त्याग कर दे तो केवल एक चेतन परमात्मा ही रह जाय। संसारमें तीन पदार्थ हैं—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। इनमें ज्ञान और ज्ञेय तो जड है तथा ज्ञाता चेतन है। जो जाननेमें आता है, उसे 'ज्ञेय' कहते हैं; जिसके द्वारा जाना जाता है, उसका नाम 'ज्ञान' है और जाननेवाला 'ज्ञाता' है। ज्ञातापर ही ज्ञेय और ज्ञान निर्भर करते हैं। ज्ञान और ज्ञेय—ये सब मानी हुई वस्तु हैं। जैसे स्वप्नका संसार माना हुआ है, वास्तवमें कोई वस्तु नहीं है, केवल संकल्पमात्र है, इसी प्रकार यह दृश्य संसार भी संकल्पमात्र है। यदि हो तो फिर—

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः*।'

(गीता २। १६)

इस सिद्धान्तके अनुसार उसका विनाश नहीं होना चाहिये, पर हमारे देखते-देखते सब पदार्थ नष्ट होते जा रहे हैं। इस विनाशशीलताके कारण ये अनित्य हैं और अनित्य होनेके कारण वास्तवमें हैं ही नहीं, संकल्पमात्र एवं काल्पनिक हैं। इनकी जो कल्पना करता है, वह चेतन है और वह आत्मा है।

आत्मा चेतनस्वरूप है और जो चेतन है, वही आनन्द है। हमें चेतनता तो प्रतीत होती है, किंतु आनन्द प्रतीत नहीं होता; क्योंकि ज्ञान और ज्ञेयके साथ आत्माका सम्बन्ध होनेके कारण उस चेतन आत्माका यथार्थ स्वरूप आच्छादित हो रहा है। जैसे सूर्य महान् प्रकाशस्वरूप है, पर बादलोंसे आच्छादित होनेपर वह नहीं दीखता, इसी प्रकार आत्मा चेतनस्वरूप है, परंतु अज्ञानसे आच्छादित होनेके कारण प्रतीत नहीं होता। आत्मा परमात्माका ही अंश है। इसलिये ज्ञानके सिद्धान्तमें आत्मा और परमात्मा एक ही वस्तु है। यह आच्छादन अपना माना हुआ है, कल्पनामात्र है। इसका बाध करनेके अनन्तर एक परमात्मा ही रह जाता है।

परमात्मा है, वह महान् है, अनन्त है, असीम है, चेतन है, ज्ञानस्वरूप है, बोधस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। इस प्रकार ध्यान करे। वह परमात्मा इस चराचर संसारके नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण है, जैसे बादलोंके नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर आकाश परिपूर्ण है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।

(१३। १५ का पूर्वार्द्ध)

'वह परमात्मा चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है।' जैसे आकाश अव्यक्त और निराकार है, वैसे ही परमात्मा भी अव्यक्त और निराकार है; किंतु आकाशके साथ परमात्माकी कोई तुलना वस्तुतः नहीं हो सकती; क्योंकि आकाश जड है और परमात्मा चेतन है, आकाश शून्य है और परमात्मा आनन्दघन है। इसीलिये

* असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है।

उसे सत्, चित्, आनन्दघन कहते हैं। सत् माने परमात्मा है। चेतन माने वह ज्ञानस्वरूप है, बोधस्वरूप है। वह चेतन ही आनन्द है। इसलिये उसे 'विज्ञान-आनन्दघन' कहते हैं।

वह आनन्द आत्यन्तिक सुखरूप है। उस सुखका ज्ञान भी उस सुखरूप परमात्माको ही है, इसलिये उस सुखरूप परमात्माको 'आनन्दमय' कहा गया है। वह आनन्द ही चेतन है और वह चेतन ही आनन्द है। इसलिये उसको विज्ञान-आनन्दघन कहते हैं। अभिप्राय यह कि उस आनन्दका ज्ञान दूसरे किसीको नहीं है, वह आनन्दमय परमात्मा आप ही अपनेको जानता है। ऐसा वह चिन्मयस्वरूप आनन्दघन है। वह परमात्माका स्वरूप हमारे ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर सब ओर परिपूर्ण है। एक विज्ञानानन्दघन परमात्माके सिवा और कुछ भी नहीं है, अर्थात् परमात्माके सिवा संसार कोई वस्तु है ही नहीं। इस प्रकार संसारको बिलकुल भुलाकर संकल्परहित हो जाना चाहिये। यही उस निर्गुण-निराकार परमात्माका ध्यान है।

भक्तिके मार्गमें तो दृढ़ वैराग्यरूपी शस्त्रके द्वारा संसारका छेदन कर देना चाहिये—उसको भुला देना चाहिये यानी तीव्र वैराग्यके द्वारा संकल्परहित हो जाना चाहिये और ज्ञानके मार्गमें संसारको स्वप्नवत् मानकर उसका इस प्रकार अभाव कर देना चाहिये कि संसार है ही नहीं। बिना हुए ही यह संसार दीखता है। परमात्माका संकल्प होनेके कारण यह सत् दीखने लगा, वास्तवमें कोई वस्तु नहीं है। परमात्मा अपने संकल्पको छोड़ दे तो संसार कहीं है ही नहीं।

अत: ऐसी धारणा करे कि परमात्माने अपने संकल्पको त्याग दिया और इससे सारे संसारका अपने-आप ही अभाव हो गया। अब केवल एक परमात्मा ही रह गये। उन निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवा और कोई भी कुछ भी नहीं है। यह आनन्द चिन्मय आनन्द है, आनन्द-ही-आनन्द है; उस आनन्दके अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। इस प्रकार समझकर उस आनन्दमय परमात्माका ध्यान करे।

भक्ति-मिश्रित ज्ञानके मार्गमें यों समझे कि परमात्माने सारे संसारका संकल्प तो उठा दिया, किंतु उसके संकल्पमें केवल मैं रह गया हूँ; क्योंकि मैं परमात्माका ध्यान कर रहा हूँ, इसलिये परमात्मा मेरा ध्यान कर रहे हैं। उनका यह कथन है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११ का पूर्वार्द्ध)

'जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।' अर्थात् जो मेरा ध्यान करते हैं, उनका मैं ध्यान करता हूँ।

जब परमात्मा मेरा ध्यान छोड़ देंगे, तब मेरी जगह भी एक चिन्मय परमात्मा ही रह जायँगे; क्योंकि पहलेसे सदा-सर्वदा चिन्मय परमात्मा ही सर्वत्र हैं। 'सर्वत्र' कहनेसे देशकी कल्पना होती है। वह देश भी परमात्माके संकल्पमें ही है; परमात्मामें वस्तुतः कोई देश नहीं है। परमात्मा सदा-सर्वदा नित्य है, यह कथन कालका वाचक है। यह काल भी परमात्माके संकल्पमें ही है। परमात्मा वास्तवमें देश-कालसे रहित है। साधनकालमें जो देश और कालकी प्रतीति हो रही है, यह परमात्मा संकल्प होनेके कारण उसका स्वरूप ही है, वस्तुतः उनके भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं। केवल एक निर्विशेष ब्रह्म है, जिसे हम सच्चिदानन्दघन कहते हैं; बस, उसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है।

इसलिये ध्यानके साधनमें हमलोगोंको ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि यह विज्ञान आनन्दघन परमात्मा हमारे चारों ओर परिपूर्ण है। 'हमारे' शब्दका अभिप्राय हमारा शरीर है। वह परमात्मा इस शरीरके चारों ओर परिपूर्ण है। वास्तवमें तो शरीर है ही नहीं, उसकी जगह परमात्मा ही है। परमात्माके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जैसे बादलके चारों ओर एक आकाश-ही-आकाश है। वास्तवमें बादल उसी आकाशसे उत्पन्न होता है और उसीमें विलीन हो

जाता है। अतः आकाशसे भिन्न बादलकी कोई पृथक् सत्ता ही नहीं है। इसलिये एक आकाश ही है, ऐसे ही परमात्माके अतिरिक्त और कोई है ही नहीं; एक परमात्मा ही है। बादलकी-ज्यों तो यह शरीर है और आकाशकी-ज्यों परमात्मा है। बल्कि परमात्मा आकाशसे सर्वथा विलक्षण है। आकाश जड है, परंतु परमात्मा चेतन है, बोधस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। जो आनन्द है, वही बोध है; और जो बोध है, वही आनन्द है। इसलिये आनन्द और बोध भी दो वस्तु नहीं है। वह आनन्द इस लौकिक आनन्दसे विलक्षण है, इसी बातको समझानेके लिये यह कहा जाता है कि वह विलक्षण आनन्द है, अलौकिक आनन्द है, अद्भुत आनन्द है, चिन्मय आनन्द है, ज्ञानस्वरूप आनन्द है, बोधस्वरूप आनन्द है।

यह आनन्दमय परमात्मा अपने ही द्वारा आप परिपूर्ण है, इसलिये उसको 'पूर्ण आनन्द' कहते हैं। उसकी सीमा नहीं है, इसलिये उसे 'अपार आनन्द' कहते हैं। उसका स्वरूप शान्तिमय है, इसलिये वह 'शान्त आनन्द' कहलाता है। वह आनन्द अत्यन्त घन है, प्रचुर है, उसमें किसी दूसरेकी गुंजाइश नहीं है; इसलिये उसको 'घन आनन्द' कहते हैं। वह अटल है, अचल है, इसलिये उसे 'ध्रुव आनन्द' कहते हैं। वह सदा रहता है, इसलिये उसे 'नित्य आनन्द' कहा जाता है। उसका कभी अभाव नहीं होता, वह वास्तवमें है, इसलिये उसे 'सत् आनन्द' कहते हैं। वह आनन्द चेतन है, इसलिये उसे 'बोधस्वरूप आनन्द' 'ज्ञानस्वरूप आनन्द' कहते हैं। वह नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर सर्वत्र समभावसे परिपूर्ण है, इसलिये उसको 'सम आनन्द' कहते हैं। उसका कोई चिन्तन नहीं कर सकता, वह किसीके चित्तका विषय नहीं है; इसलिये उसको 'अचिन्त्य आनन्द' कहते हैं। उसका चिन्तन होता ही नहीं, यह समझना ही उसको जानना है। हम जो विज्ञान-आनन्दघनका चिन्तन करते हैं और हमारे चिन्तनमें जो स्वरूप आता है, वास्तवमें उससे परमात्माका स्वरूप बहुत ही विलक्षण है। बुद्धिके द्वारा तो उसी स्वरूपका चिन्तन होता है, जो बुद्धिसे मिला हुआ हो। इसलिये बुद्धि-विशिष्ट ब्रह्मस्वरूपका ही चिन्तन होता है यानी जो बुद्धिग्राह्य है, उसीका बुद्धिसे चिन्तन होता है। इसीलिये उसे 'बुद्धिग्राह्यम्' (गीता ६।२१) अर्थात् वह सूक्ष्म होनेके कारण बुद्धिके द्वारा समझमें आता है, ऐसा कहा है।

वह महान् है, इसलिये उसे 'महा आनन्द' कहते हैं। वह सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये उसको 'परम आनन्द' कहते हैं। चेतन ही उसका स्वरूप है, इसलिये उसे 'चिन्मय आनन्द' कहते हैं। जो चेतन है, वही आनन्द और जो आनन्द है, वही चेतन है। ऐसा जो आनन्दमय परमात्माका स्वरूप है, उस आनन्दमय स्वरूपमें साधकको नित्य-निरन्तर निमग्न रहना चाहिये।

उस 'आनन्दमय'में अपार आनन्द है, महान् आनन्द है, आनन्द-ही-आनन्द है। एक आनन्दके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। ऐसे आनन्दमें मस्त रहना चाहिये।

साधकको चलते-फिरते समय इस प्रकारका अभ्यास करना चाहिये कि यह शरीर परमात्मामें ही चल रहा है—विचरण कर रहा है। जैसे आकाशमें बादल घूमते हैं, ऐसे ही परमात्मामें यह शरीर घूमता है। बादल आकाशसे कोई भिन्न वस्तु नहीं है; क्योंकि आकाशसे ही बादलकी उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार परमात्मासे ही शरीरकी उत्पत्ति हुई है; क्योंकि परमात्माका संकल्प ही तो शरीर है। इसलिये यह शरीर भी परमात्मासे कोई पृथक् वस्तु नहीं। आकाशमें बादलकी भाँति परमात्मामें ही यह परमात्माका संकल्परूप शरीर घूम रहा है। वह परमात्मा आनन्दमय है, चिन्मय है, विज्ञान-आनन्दघन है। उसके सिवा और कोई वस्तु है ही नहीं। इस प्रकार हर समय उत्तरोत्तर साधनको तेज करना चाहिये।

ध्यानकालमें साधकको प्रत्यक्षकी भाँति ऐसा अनुभव करना चाहिये—'अहो! कैसी शान्ति हो रही है। शान्तिके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। परमात्मा ही शान्तिके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं। अहो! कैसी ज्ञानकी बहुलता है। ज्ञान ही ज्ञान है। ज्ञानके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। परमात्मा ही ज्ञानके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं। अहो! कैसी चेतनता है! चेतनताके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। परमात्मा ही चेतनके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं। अहो! कैसा आनन्द है। हम देखते हैं कि हमारे मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर सबके बाहर-भीतर एक आनन्द-ही-आनन्द परिपूर्ण हो रहा है अर्थात् हमारे रोम-रोममें, अणु-अणुमें सब जगह आनन्दमय परमात्मा ही प्रत्यक्ष परिपूर्ण हो रहे हैं और शरीरकी यह आकृति केवल कल्पनामात्र है। वास्तवमें उसकी जगह आनन्द-ही-आनन्द है। आनन्दके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। ऐसे आनन्दमें निरन्तर निमग्न रहना चाहिये। वह आनन्द ही शान्तिके रूपमें दीख रहा है। वह आनन्द ही ज्ञानके रूपमें दीख रहा है और वह आनन्द ही चेतनके रूपमें दीख रहा है। ये सब उसके पर्याय हैं। वास्तवमें यह सब उस आनन्दमय परमात्माका ही स्वरूप है।

आनन्दमय! आनन्दमय!! आनन्दमय!!! पूर्ण आनन्द! अपार आनन्द! शान्त आनन्द! घन आनन्द! ध्रुव आनन्द! नित्य आनन्द! बोधस्वरूप आनन्द! ज्ञानस्वरूप आनन्द! परमानन्द! महान् आनन्द! आत्यन्तिक आनन्द! अचिन्त्य आनन्द! आनन्द-ही-आनन्द! आनन्द-ही-आनन्द!! आनन्द-ही-आनन्द!!! ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

दृढ़ निश्चयकी शक्ति

एक सेवक कुछ समयसे एक आश्रममें प्रबन्धनका कार्य कर रहा था, लेकिन उसकी सेवा और मेहनतका प्रभाव उसके आश्रमके लोगों और कार्योंपर दिखायी नहीं दे रहा था। बहुत कोशिशोंके बाद भी जब कोई सुधार न हुआ तो वह निराश होने लगा। एक रात उसे एक स्वप्न दिखायी दिया। जिसमें वह एक हथौड़ेद्वारा एक भारी चट्टानको तोड़नेका प्रयत्न कर रहा था। घण्टोंसे लगातार और पूरी सामर्थ्यसे किये गये प्रहारोंके बावजूद उसकी कोशिश बेकार जाती दिखायी दे रही थी। उसने सोचा, इसमें मेहनत करनेका कोई फायदा नहीं है, मैं इस कामको छोड़ रहा हूँ और उसने हथौड़ा नीचे रख दिया। तभी एक व्यक्ति उसके पास आया और उससे पूछा—'क्या तुम्हें इसी कार्यके लिये नियुक्त नहीं किया गया था? तुम अपनी जिम्मेदारीसे मुँह क्यों मोड़ रहे हो?' सेवकने उत्तर दिया—'श्रीमान्, यह कार्य व्यर्थ है, इतनी मेहनतके बाद भी इस चट्टानपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अब क्यों मैं व्यर्थमें अपनी ताकत और समय इसमें गँवाऊँ?'

व्यक्तिने उत्तर दिया—यह सब सोचना तुम्हारा काम नहीं है। जिसने तुम्हें यह जिम्मेदारी दी है, वह इस सबके बारेमें जानता है, उसे तुम्हारी योग्यता और सामर्थ्यका भी पता है तथा इस चट्टानकी मजबूती भी। बस, सौंपा गया कार्य दृढ़ निश्चयके साथ भली-भाँति करो, परिणामकी चिन्ता मत करो। चलो, निराशा छोड़ो और पुनः अपने कार्यमें लग जाओ।'

उस व्यक्तिके कहनेपर सेवकने हथौड़ा फिरसे उठाकर उस चट्टानपर भरपूर प्रहार किया, अबकी बार एक ही प्रहारमें चट्टान टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गयी। वह चौंककर जाग उठा, उसे मार्ग मिल गया था, वह अपने कार्यके लिये एक महत्त्वपूर्ण सबक सीख चुका था, वह यह जान चुका था कि उसे अपना कार्य करते रहना है, बिना परिणामकी चिन्ता किये।—श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी

बन्धनोंसे छूटनेका नाम मुक्ति

(ब्रह्मलीन वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)

मनुष्यको बाह्य (बाहरी संसारके) जीवनमें चलते-चलते कई प्रकारके संकट उपस्थित होते हैं। यही जीवनमें उत्पन्न हुआ अनर्थका स्वरूप है और इसी कारणसे मन बाहर ही भटकता रहता है। वह भटका और बिखरा हुआ मन शरीरके अन्दरकी सारी शक्तिको भी बाहर ही भटका देता है, उससे फिर उस मनुष्यका मन कहींपर भी नहीं लगता अर्थात् वह कहींपर भी प्रीतिको नहीं पाता और वह सदा अशान्त ही रहता है। उस अशान्त मनको शान्त करनेका केवल यही उपाय है कि वह बाहर भटकी हुई ज्ञान (समझ)-शक्ति अपनेमें ही इकट्ठी हो जाय और उसका क्रियाशक्तिरूप प्राण भी देहमें एकत्रित हो जाय। फिर उसको अपने-आपमें ऐसी शान्ति और ऐसा सुख मिलता है, जैसा कि नींदमें भी उसको नहीं मिल पाता। किसी प्रकारके बाह्य विषयके सम्बन्धसे और बाहरके संसारके लाभसे भी उसको इतना सुख नहीं होता, जितना सुख उसको अपने मनके अन्दर शक्तिका संचय होनेसे मिलता है।

सुख तो संसारमें और भी बहुत-से हैं अर्थात् जहाँ जो वस्तु अच्छी लगती है, वह मनमें सुखरूपसे महसूस करनेमें आती है। यह भी एक प्रकारका क्षणिक सुख ही है, परंतु जहाँ मन अपने-आपमें यह अनुभव करे कि यह अवस्था अति उत्तम है, इसमें मैं बड़े आनन्दमें हूँ, मुझे इससे और दूसरा सुख नहीं चाहिये। ऐसी जो अवस्था है, यह परम शान्त धाम (पद) है। यह शान्तिका धाम (पद) तब मिलता है जब बाहर भटकी हुई शक्ति यदि अपने आपमें एकत्रित (इकट्ठी) हो जाय अर्थात् संचित हो जाय। यह शक्ति अन्दर इकट्ठी इसलिये नहीं हो पाती है कि जन्मसे ही मन बाहर ही पूर्ण रूपसे भटक जाता है, बाहर ही उसका सब स्वार्थ है और बाहर ही उसने सब प्रकारका सुख समझ रखा है।

उस बाहरी सुखको पानेके लिये और दु:खको हटानेके लिये जो कर्म वह बाहर करता है, उसीकी चिन्ता मनमें इतनी बढ़ जाती हैं कि पाँचों इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब बाहर ही बहते रहते हैं। बाहर बहते-बहते वह ऐसा हो जाता है कि जैसे ज्ञानशक्ति एवं प्राणशक्ति (क्रिया-शक्ति) दोनों अन्दर तो शून्य-जैसी हो जाती हैं। अब यह सत्य साधारण जनके ज्ञानमें तो आता नहीं है। यह अन्दरका सत्य ज्ञान (समझ)-में तब आता है, जब मन चिन्तामें होता है। उस चिन्ताके समय श्वास भी पूरा नहीं चलता है और उससे बीमारियाँ भी खड़ी होने लग जाती हैं। तब इस बाहर बहते हुए मनका दु:ख प्रकट होने लग जाता है। जैसे कि किसी वस्तुके सेवन करनेसे किसीको दु:ख उत्पन्न हो जाता है और उस वस्तुमें इस मनुष्यका राग या प्रीति है। अब यदि बतानेवाले बुद्धिमान् मनुष्य उसको बतला भी देते हैं कि अमुक वस्तुका सेवन करना बन्द कर दो, परंतु दूसरे-द्वारा उस समय इस वस्तुका सेवन करना बन्द नहीं होता है। उस बेचारेमें इतनी शक्ति ही नहीं है कि वह अपने आपको संयम (काबू)-में रख सके। कारण कि उसका स्वार्थ बाहर ही इतना बन चुका है कि वह उस स्वार्थको छोड़ना ही नहीं चाहता है। बस, वही बन्धन कहा जाता है।

उन्हीं बन्धनोंसे छूटनेका नाम मुक्ति है। यदि आप आध्यात्मिक या शास्त्रकी रीतिसे, जैसे ऋषि-मुनि इसका मार्ग बतला गये हैं, चलनेका प्रयत्न करेंगे, तो ऐसी बात नहीं है कि इन बन्धनोंसे छुटकारा नहीं हो। इस छुटकारेका नाम ही मुक्ति कहा गया है, जैसे कोई मनुष्य कारागार (जेल)-से छूट गया।

यह प्रकृतिका बन्धन सहसा (एकदम) नहीं पटका जा सकता; क्योंकि जिस प्रकारसे मनुष्य बाहर ही बाहर संसारके रास्तेपर चलता है, चलते-चलते इसके अन्दर एक ऐसी शक्ति खड़ी हो जाती है, जो गुप्त रीतिसे बैठी-बैठी बल पकड़ती रहती है। वह शक्ति मनुष्यको अपने हितकी ओर चलने ही नहीं देती है। चाहे इसका नाम संस्कारोंकी शक्ति, अविद्या या माया कहो, परंतु शास्त्रोंमें इसका नाम प्रकृति है; क्योंकि बहुत बलसे आपने यत्न करके किसी कर्मको एक बार किया, दो बार किया, दस

बार किया। इस प्रकार उस कर्मको पुनः-पुनः (बार-बार) करते-करते इतनी ढाल पड़ गयी है कि उस कर्मको करनेकी दिशामें चलनेकी एक लाइन ही बन गयी। जैसे उसीपर अब आपकी गाड़ी चलेगी, परंतु जीवन चलनेकी वह लाइन एक शक्तिरूपमें किसी भी कामको बार-बार करनेसे बनी है। इसलिये बार-बार किसी कार्यको करना और उस कृतिका आदतरूपमें शक्ति बन जाना ही प्रकृति है। अब वह प्रकृति मनुष्यके अन्दर एक स्वभावरूपमें बैठ जाती है। मनुष्य इसीकी ही सब तरंगों या जोशोंको अपना करके मान लेता है। अब वह शान्ति नहीं लेने देती। वह प्रकृति यही करती है कि नींदमें अपने ही ढंगके संकल्प (इरादे) खड़े करेगी। जाग्रत्-अवस्थामें अपनी ही बुद्धियाँ, भाव एवं उत्तेजनाएँ (जोश) उत्पन्न करती हैं और इन्द्रियोंको भी अपने ही ढंगसे चलाती हैं। शरीर भी बिना किसी यत्नके उधर ही बह जाता है। ऐसी ही शक्तिका नाम प्रकृति शक्ति है। [**प्रेषक—श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग**]

यथार्थ मानव

एक कोई पुरुष अपने घरमें सोया हुआ था। अकस्मात् उसकी आँखें खुलीं तो देखता है कि सारे घरमें दिव्य प्रकाश छा रहा है। वह चकित और भयभीत-सा होकर देखता है कि उस प्रकाशमें कोई व्यक्ति है। वह साहस करके पास गया तो देखा कि वे परम प्रसन्न और आनन्दमय पुरुष हैं, जिनके पास एक बही खाता-सा है, जिसमें वे कुछ लिख रहे हैं। प्रेमपूर्वक श्रीचरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़ पूछा, 'महातेजस्वी कृपालु! आप कौन हैं और कैसे इस दासपर कृपा करके पधारे हैं तथा क्या कर रहे हैं?'

महापुरुष बोले—''भैया! मैं विश्वपति श्रीहरिका एक तुच्छ दास हूँ, मेरा नाम नारद है, मैं श्रीहरिके धामसे आया हूँ। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे आज्ञा दी है कि 'तुम मेरे विश्वमें जाकर मेरे प्यारे भक्तोंके नाम और गुण लिखकर लाओ, जिससे मैं देखूँगा कि उन सबमें मेरा सबसे बढ़कर प्यारा कौन है।' अतः मैं वही काम कर रहा हूँ।'' यह सुन वह पुरुष बोला कि 'महाराज! मैं तो उन श्रीभगवान्‌का भजन-पूजन कुछ भी नहीं जानता और न मुझे उनका कुछ परिचय ही प्राप्त है। इतना ही जानता हूँ कि सब जीव उनके ही हैं और उनकी प्यारी सन्तानें हैं। इसलिये जबसे मैंने होश सँभाला है, मैं सब प्रकार हर्षपूर्वक उनकी सेवा करता रहता हूँ। रोगी हो, दुखी हो, विपत्तिमें पड़ा हो, अपने सुख-स्वार्थको भूल प्राणपणसे उनकी सेवा करता रहता हूँ, और कोई भी किसी कामको कहे, अपना काम छोड़, पहले उसका काम करनेमें मुझे बड़ा सुख होता है। किसीका भी किसी प्रकारका भी दुःख मुझसे सहा नहीं जाता। उसे दूर करनेकी मैं भरसक चेष्टा करता हूँ। मैं रास्तोंमें पेड़ लगाता और उनको सींचता रहता हूँ, जिससे राहगीरोंको सुख मिले। वनमें पशुओंके पीनेके लिये अपने हाथों तालाब आदि खोदता हूँ। जिस प्रकार भी बन सके, सभी जीवोंको सुखी करनेमें ही मुझे सुख होता है। इसलिये यदि आपके मनमें आये तो श्रीभगवान्‌के जीवोंके सेवकमें मेरा भी नाम लिख लीजिये।' श्रीनारदजी बोले—'अच्छा भैया! मैंने लिख लिया।'

बहुत समयके बाद एक बार फिर उस पुरुषकी रातको सोतेमें आँखें खुलीं और उसने उसी प्रकार दिव्य प्रकाशमें श्रीनारदजीके फिर दर्शन किये। वह आनन्दसे दौड़कर पास गया। दण्डवत्-प्रणाम करके पूछा कि 'अब आप कैसे पधारे हैं?' श्रीनारदजी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक बोले—'भैया! मैंने जब जाकर अपना खाता श्रीभगवान्‌के सामने पेश किया, उन्होंने सारा-का-सारा पढ़ा, फिर बड़े हर्षसे तुम्हारे नामपर ही सबसे पहले उँगली रखी। इसलिये मैं तुम्हें शुभ संवाद सुनाने आया हूँ। तुम धन्य हो, तुम्हीं सबसे बढ़कर श्रीभगवान्‌के परम प्यारे हो।'—ब्रह्मलीन स्वामी श्रीहरिबाबाजी महाराज

भगवान् सगुण हैं या निर्गुण ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक सज्जनने पूछा है कि 'भगवान् या ब्रह्मका स्वरूप सगुण है या निर्गुण अथवा दोनों ही ?' इसके उत्तरमें निवेदन है कि भगवान् या ब्रह्मका वस्तुतः क्या स्वरूप है, इसको तो भगवान् या ब्रह्म ही जानते हैं। कोई भी मनुष्य यह नहीं कह सकता कि भगवान् ऐसे ही हैं तथापि भगवान्को जो जैसा मानते हैं, जिन्होंने जिस प्रणालीसे या जिस स्वरूपकी सेवा करके उनकी उपलब्धि की है, वे उनको जैसा बतलाते हैं, वह भी ठीक ही है; क्योंकि वह स्वरूप भी भगवान्में और भगवान्का ही है। वे निर्गुण भी हैं, सगुण भी हैं, निराकार भी हैं, साकार भी हैं, निर्गुण-सगुण और निराकार-साकार दोनों साथ हैं, निर्गुण-सगुण और निराकार-साकार दोनोंसे परे भी हैं, वे अनिर्वचनीय हैं—अचिन्त्य हैं। इसीसे उपनिषदोंमें तथा शास्त्रोंमें उनके सभी तरहके वर्णन मिलते हैं। उपनिषदोंके कुछ अवतरण देखिये—

निर्गुण—

स होवाचैतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यम्।

(बृह० ३। ८। ८)

'याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे गार्गि! इस अक्षरको ब्रह्मवादीजन स्थूलसे भिन्न, अणुसे भिन्न, ह्रस्वसे भिन्न, दीर्घसे भिन्न, लाल रंग (किसी रंगविशेष)-से भिन्न, चिकनेपनसे भिन्न, छायासे भिन्न, अन्धकारसे भिन्न, वायुसे भिन्न, आकाशसे भिन्न, असंग, रससे भिन्न, गन्धसे भिन्न, नेत्रसे भिन्न, श्रोत्रसे भिन्न, वाणीसे भिन्न, मनसे भिन्न, तेजसे भिन्न, प्राणसे भिन्न, मुखसे भिन्न, मात्रासे भिन्न, अन्तरसे भिन्न और बाहरसे भिन्न कहते हैं।'

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतम्।

(माण्डूक्य० ७)

'वह अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, एकात्मप्रत्ययसार, प्रपंचसे रहित, शान्त, शिव और अद्वैत है।'

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।

(कठ० १। ३। १५)

'जो शब्दरहित है, स्पर्शरहित है, रूपरहित है, अव्यय है, रसरहित है, नित्य है और गन्धरहित है।'

'स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यः।'

(बृह० ४। २। १)

'वह यह आत्मा 'यह भी नहीं, यह भी नहीं' इस प्रकार अग्राह्य है।'

सगुण—

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।

(माण्डूक्य० ६)

'वह सबका ईश्वर है, वह सर्वज्ञ है, वह अन्तर्यामी है, वह सबका कारण है, उसीसे सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है।'

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तः।

(छान्दोग्य० ३। १४। ४)

'वह सब कर्म करनेवाला है, सब कामनावाला है, सब गन्धवाला है, सब रसवाला है इससे सबमें व्याप्त है।'

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः।

(प्रश्न० ४। ९)

'वही देखनेवाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूँघनेवाला, चखनेवाला, मनन करनेवाला, जाननेवाला, करनेवाला, विज्ञानात्मा पुरुष है।'

निर्गुण-सगुण—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

(श्वेताश्वतर० ६। ११)

'एक देव सब भूतोंमें छिपा है, सबमें व्यापक है, सब भूतोंका अन्तरात्मा है, कर्मोंका अध्यक्ष—फलदाता है, सब भूतोंका वासस्थान है, साक्षी है, चेतन है, केवल है और निर्गुण है।'

निराकार—

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तद-पाणिपादम्।

(मुण्डक० १।१।६)

'वह जो अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, अवर्ण है, चक्षु और श्रोत्ररहित है और हाथ तथा पैरसे रहित है।'

साकार—

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्॥
गोपगोपीगवावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम्।
दिव्यालङ्करणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम्॥
कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम् ।
चिन्तयन् चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः॥
एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य
एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति।
तं पीठं येऽनुभजन्ति धीरा-
स्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम्॥

(गो० पू० ता०)

'श्रेष्ठ कमलनेत्र, मेघद्युति, विद्युत्-सदृश पीत अम्बरधारी, द्विभुज, ज्ञानमुद्रायुक्त, वनमाली, ईश्वर, गोप-गोपी और गौओंके रक्षक, कल्पवृक्षके नीचे विराजित, दिव्य अलंकारोंसे विभूषित, रत्नकमलके बीचमें विराजित, कालिन्दीके जलकी लहरोंसहित पवनसे सुसेवित श्रीकृष्णका जो चिन्तन करता है, वह संसारसे मुक्त हो जाता है।

वह एक, वश करनेवाला, सर्वव्यापी पूज्य श्रीकृष्ण, जो एक होकर भी बहुत प्रकारसे दिखायी देता है, उस आश्रयको जो भजते हैं, उन्हींको सनातन सिद्धि प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं होती।'

और भी अनेकों श्रुतियाँ भगवान्‌का विविध प्रकारसे वर्णन करती हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं। उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। दो प्रकारके परस्परविरोधी गुण, भाव और स्वरूप जिनमें एक ही साथ एक ही समय रह सकते हों, वही तो भगवान् हैं। श्रुति उन्हें निर्गुण भी बतलाती है, सगुण भी। अतएव हमें दोनों ही बातें माननी चाहिये। भगवान्‌के सम्बन्धमें यह आपत्ति कभी नहीं ठहरती कि वे सगुण-निर्गुण दोनों एक साथ कैसे हो सकते हैं।

कुछ लोग एक और आपत्ति करते हैं—वे कहते हैं कि ब्रह्म तो निष्कल (कला या अंशरहित) हैं और हम यदि सगुण तथा निर्गुण दोनों मानते हैं तो उनका कुछ अंश सगुण होगा और कुछ निर्गुण और यदि ऐसी बात है तब तो वह निष्कल—निरंश नहीं ठहरते हैं और यदि निरंश नहीं हैं तब वे ब्रह्म कैसे? श्रुतिमें स्पष्ट ही ब्रह्मको निरंश बतलाया गया है—

निष्कलं निष्क्रियꣳ शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।

(श्वेताश्वतर० ६।१९)

'ब्रह्म कला (अंश)-रहित, क्रियारहित, शान्त, निर्दोष और मायारहित है।' इसका उत्तर यह है कि ब्रह्मका कुछ अंश निर्गुण है और कुछ सगुण है, ऐसी बात नहीं है। ब्रह्ममें अंशकी कल्पना नहीं हो सकती। वह स्वरूपतः ही युगपत् निर्गुण भी है और सगुण भी। परस्परविरोधी गुणोंका उनमें नित्य निवास है; परंतु यदि ऐसा मानें कि 'निर्गुण ब्रह्मके जितने अंशमें मायाके कारण सगुणता आती है उतना अंश सगुण है, शेष निर्गुण है', तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा माननेपर तो ब्रह्म स्वरूपतः निर्गुण ही सिद्ध होता है। सगुण तो मायाके कारण भासता है, वस्तुतः है नहीं। केवल निर्गुणवादी महानुभावोंका यही तो कथन है कि 'मायाकी उपाधिसे ब्रह्ममें सगुणताकी प्रतीति होती है। स्वरूपतः ब्रह्म निर्गुण ही है और वही उसका यथार्थ स्वरूप है। ऐसा निर्गुण ब्रह्म कभी सगुण हो नहीं सकता।' पर श्रुतियोंके उपर्युक्त वचनोंसे तथा महात्माओंके अनुभवसे यह सिद्ध है कि ब्रह्म या भगवान् सगुण-निर्गुण दोनों हैं। ऐसी अवस्थामें ब्रह्मके स्वरूपतः निरंश होनेपर भी उनमें अंशकी कल्पना करनी पड़ती है। अंश-कल्पनामें

आपत्ति यही है कि उसमें न्यूनाधिक होना सम्भव है, परंतु ब्रह्ममें अंश-कल्पना इस प्रकार नहीं होती। जैसे ब्रह्म अनन्त और असीम है, वैसे ही उसका अंश भी अनन्त और असीम है। श्रुतिने इसी सिद्धान्तका समर्थन करते हुए स्पष्ट कहा है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(ईश०)

'यह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है और पूर्णका पूर्ण लेकर पूर्ण ही बच रहता है।' गणितके अनुसार भी यह सिद्ध है कि अनन्तमेंसे अनन्त निकालनेपर अनन्त ही बचता है।

हमारे इस दृश्य-जगत्‌में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसके बारेमें यह कहा जा सके कि उसमें एक ही साथ दो परस्परविरोधी गुण रहते हैं और जो अनेक रूपोंमें विभक्त होनेपर भी एक और परिपूर्ण रहता है।

जो लोग कहते हैं कि मायाकी उपाधिसे ब्रह्ममें सगुणभावकी प्रतीति होती है—उनके कथनपर विचार करते भी पता लगता है कि वस्तुतः इसमें भी सगुण स्वरूप ब्रह्मका ही सिद्ध होता है। माया ब्रह्मकी शक्ति है। शक्ति और शक्तिमान् अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिके समान अभिन्न हैं। इसलिये ब्रह्म सगुण हैं, या ब्रह्म अपनी शक्तिकी सहायतासे सगुणरूपमें रहते हैं। इसमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि किसी भी कर्मकी सम्पन्नता शक्तिसे ही होती है। पर वह कार्य है तो शक्तिमान्‌का ही। अतएव ब्रह्म, जो मायाके सहयोगसे सगुण होते हैं, इससे यही सिद्ध होता है कि सगुण भी उसका स्वरूप ही है।

शास्त्रोंमें एक ही साथ भगवान्‌के सगुण-निर्गुणकी व्याख्या और तरहसे भी की गयी है, जो वस्तुतः बहुत समीचीन और युक्तियुक्त प्रतीत होती है। भगवान् प्रकृतिके गुणोंसे सर्वथा अतीत हैं। इसलिये वे निर्गुण हैं और उनमें उनके स्वरूपभूत अचिन्त्यानन्त दिव्यगुण नित्य निवास करते हैं, इसलिये वे सगुण भी हैं। यों वे 'नित्य निर्गुण' रहते हुए ही 'नित्य सगुण' हैं और नित्य सगुण होते हुए ही 'नित्य निर्गुण' हैं। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं भगवान् श्रीशंकरजीसे कहा है—

यद्यद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम्।
घनीभूतामलप्रेम सच्चिदानन्दविग्रहम्॥
नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रियाहीनं परात्परम्।
वदन्त्युपनिषत्सङ्घा इदमेव ममानघ॥
प्रकृत्युत्थगुणाभावादनन्तत्वात्तथेश्वरम्।
असिद्धत्वान्मद्‌गुणानां निर्गुणं मां वदन्ति हि॥
अदृश्यत्वान्ममैतस्य रूपस्य चर्मचक्षुषा।
अरूपं मां वदन्त्येते वेदाः सर्वे महेश्वर॥
व्यापकत्वाच्चिदंशेन ब्रह्मेति च विदुर्बुधाः।
अकर्तृत्वात्प्रपञ्चस्य निष्क्रियं मां वदन्ति हि॥
मायागुणैर्यतो मेंऽशाः कुर्वन्ति सर्जनादिकम्।
न करोमि स्वयं किञ्चित् सृष्ट्यादिकमहं शिव॥

(पद्मपु० पा० ५१। ६६—७१)

'हे शंकरजी! मेरे जिस अलौकिक (हानोपादानरहित, देह-देहि-भेदहीन स्वरूपभूत दिव्य भगवद्देह) रूपको आज आपने देखा है, वह विशुद्ध प्रेमकी घनमूर्ति है और सच्चिदानन्दस्वरूप है। उपनिषद्-समुदाय मेरे इसी रूपको 'निराकार', 'निर्गुण', 'सर्वव्यापी', 'निष्क्रिय' और 'परात्पर ब्रह्म' कहते हैं। मुझमें प्रकृतिजन्य गुणोंका (सत्त्व-रज-तमका) अभाव होनेसे और मेरे अन्दर गुणोंकी सत्ताको असिद्ध मानकर वे मुझको 'निर्गुण' कहते हैं और 'अनन्त' होनेसे मुझको 'ईश्वर' कहते हैं। मेरा यह रूप चर्मचक्षुओंसे देखा नहीं जाता, इसलिये हे महेश्वर! ये समस्त वेद मुझको रूपरहित—'निराकार' कहते हैं। अपने चैतन्यांशसे सर्वव्यापक होनेके कारण— पण्डितगण मुझे 'ब्रह्म' कहते हैं और इस विश्वप्रपंचका कर्ता न होनेसे वे मुझको 'निष्क्रिय' कहते हैं; क्योंकि हे शिवजी! मैं स्वयं सृष्टि आदि कुछ भी कार्य नहीं करता। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप मेरे अंश ही मायाके गुणोंके द्वारा सृष्टि आदि कार्य करते हैं।'

इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि भगवान्‌का स्वरूप 'नित्य निर्गुण' और 'नित्य सगुण' किस प्रकार है? इसी बातको बतलानेके लिये तत्त्व-निर्णय करते हुए

भागवतकारने बतलाया कि 'तत्त्व'का ही एक नाम 'ब्रह्म' है। तत्त्वविद् लोग इस तत्त्वको 'अद्वयज्ञान' कहते हैं और तीन श्रेणीके साधक इस 'अद्वयज्ञान' को ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—इन तीन भावोंके द्वारा उपलब्ध करते हैं—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

तत्त्व एक ही है, उसकी अनुभूति तीन प्रकारसे होती है। वैष्णव महानुभाव इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि औपनिषद सम्प्रदाय उसे 'ब्रह्म' कहते हैं, हिरण्यगर्भ-सम्प्रदायके योगीगण 'परमात्मा' और वैष्णव उसे 'भगवान्' कहते हैं। जगत्तत्त्व ब्रह्मज्ञान है, आत्मतत्त्व परमात्मज्ञान या योग है एवं ईश्वरतत्त्व भगवत्-स्वरूप या भक्ति है। लीलाभेदसे ही भगवान् या ब्रह्मके ये तीन स्वरूप हैं, भगवान् सर्वथा-सर्वदा एक ही तत्त्व हैं और वे सगुण, निर्गुण, साकार-निराकार सब कुछ हैं तथा सब कुछसे परे हैं। यह भी केवल समझनेके लिये संकेतभर है। वस्तुतः भगवान्का स्वरूप भगवान् ही जानते हैं और किसी भी तर्कसे या पुरुषार्थसे नहीं, उनके कृपापूर्वक जनानेपर ही किसी भाग्यवान् साधकके द्वारा उनका स्वरूप किसी अंशमें जाना जा सकता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

(कठ० १। २। २३)

'यह आत्मा न प्रवचनसे प्राप्त होता है, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही। यह स्वयं जिसपर कृपा करता है, उसीके सामने अपने आनन्दात्मक स्वरूपका प्रकाश करता है।'

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई'

सच्चा साधु

भगवान् बुद्धका एक पूर्ण नामक शिष्य उनके समीप एक दिन आया और उसने तथागतसे धर्मोपदेश प्राप्त करके 'सुनापरन्त' प्रान्तमें धर्मप्रचारके लिये जानेकी आज्ञा माँगी। तथागतने कहा—'उस प्रान्तके लोग तो अत्यन्त कठोर तथा बहुत क्रूर हैं। वे तुम्हें गाली देंगे, तुम्हारी निन्दा करेंगे तो तुम्हें कैसा लगेगा?'

पूर्ण—'भगवन्! मैं समझूँगा कि वे बहुत भले लोग हैं; क्योंकि वे मुझे थप्पड़-घूँसे नहीं मारते।'

बुद्ध—'यदि वे तुम्हें थप्पड़-घूँसे मारने लगें तो?'

पूर्ण—'मुझे पत्थर या डंडोंसे नहीं पीटते, इससे मैं उन्हें सत्पुरुष मानूँगा।'

बुद्ध—'वे पत्थर-डंडोंसे भी पीट सकते हैं।'

पूर्ण—'वे शस्त्रप्रहार नहीं करते, इससे वे दयालु हैं—ऐसा मानूँगा।'

बुद्ध—'यदि वे शस्त्रप्रहार ही करें?'

पूर्ण—'मुझे वे मार नहीं डालते, इसमें मुझे उनकी कृपा दीखेगी।'

बुद्ध—'ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे तुम्हारा वध नहीं करेंगे।'

पूर्ण—'भगवन्! यह संसार दुःखरूप है। यह शरीर रोगोंका घर है। आत्मघात पाप है, इसलिये जीवन धारण करना पड़ता है। यदि 'सुनापरन्त' (सीमाप्रान्त)-के लोग मुझे मार डालें तो मुझपर वे उपकार ही करेंगे। ये लोग बहुत अच्छे सिद्ध होंगे।'

भगवान् बुद्ध प्रसन्न होकर बोले—'पूर्ण! जो किसी दशामें किसीको भी दोषी नहीं देखता, वही सच्चा साधु है। तुम अब चाहे जहाँ जा सकते हो, धर्म सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करेगा।'

जगत्स्वप्न

(संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल)

स्वप्नमें हम क्या-क्या देखते हैं, क्या-क्या सुनते हैं, क्या-क्या करते हैं, किंतु यह सब बाह्य कुछ भी नहीं होता। मन ही अपने भीतर यह सारी सृष्टि करता है। मनकी यह एक अद्भुत शक्ति है। स्वप्नमें देखे हुए सारे दृश्य मनोमय होते हैं। बहिर्जगत्के साथ उनका केवल यही सम्बन्ध होता है कि बहुधा स्वप्नमें देखे गये पदार्थ बहिर्जगत्के प्रतिबिम्बमात्र होते हैं, परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि सदा स्वप्न-जगत्में बहिर्व्यापारका ही प्रतिबिम्ब होता है। स्वप्नमें ऐसे दृश्य भी देखे जाते हैं, जिनकी पहले कल्पना भी नहीं होती। वे दृश्य केवल मिथ्या कल्पनारूप नहीं होते हैं, बल्कि यथार्थ सत्यकी भाँति ही ठीक होते हैं। वस्तुतः स्वप्नका रहस्य बड़ा ही दुर्गम है; उसे 'कुछ नहीं' कहकर उड़ा नहीं दिया जा सकता। स्वप्नमें हम कितने जीव, कितनी घटनाएँ, कितने स्थान देखते हैं; परंतु निद्रा-भंग होनेपर उनमेंसे कुछ भी नहीं रह जाता। मनके भीतर मन ही उनकी सृष्टि करता है और मनमें ही वे विलीन हो जाते हैं। जैसा यह स्वप्न-जगत् है, ठीक वैसा ही यह वास्तविक जगत् भी है। यदि यह जाग्रत्-स्वप्न कभी टूट जाय तो देखनेमें आयेगा कि जगत् या जगत्की कोई भी वस्तु नहीं है, केवल 'तुम' ही हो। जबतक स्वप्न देखा जाता है, तबतक स्वप्नमें देखे गये पदार्थ मिथ्या नहीं जान पड़ते, परंतु जागते ही जान पड़ता है कि वे सब मिथ्या हैं। ऐसे ही सूक्ष्म देहमें जागनेपर यह स्थूल देह और भौतिक पदार्थसमूह स्वप्नदृष्ट वस्तुके समान अदृश्य हो जाते हैं, इसी प्रकार कारण-देहमें भी जागरण होता है। वह विशुद्ध ज्ञानमय होता है। इसीसे यथार्थ जागरणका आभास मिलता है। यथार्थ जागरण होनेपर तो हम एक और ही तरहके मनुष्य हो जाते हैं। तब जान नहीं पड़ता कि हम इस जगत्के आदमी हैं। जगत्के लोग भी उसे फिर दूसरे ही नेत्रोंसे देखते हैं, वह भी इस जगत्को एक स्वतन्त्र मूर्तिमें देखता है। उस समय, देश-काल-ज्ञानकी कोई बाधा उसके सामने नहीं आती। समस्त जगत्में वह एक नवीन मनुष्य हो जाता है और उसकी दृष्टिमें भी संसार मानो एक अभिनव आनन्दनिकेतन बन जाता है।

स्वप्नमें प्राप्त पदार्थको जागनेपर नहीं पानेसे जिस प्रकार हमें दुःख नहीं होता, उसी प्रकार जिसका यथार्थ 'जागरण' हो गया है, उसे फिर इस जगत्के मान, सम्पत्ति और ख्यातिके लिये कोई खेद नहीं होता। स्वप्नको देखते समय उसे कोई स्वप्न नहीं समझ सकता। इसी प्रकार जबतक मनुष्य प्रबुद्ध नहीं हो जाता, तबतक इस जगत्को मिथ्यारूपमें विश्वास कर लेना अवश्यमेव कठिन है। स्वप्नमें कभी-कभी जान पड़ता है मानो हम स्वप्न देखते हैं, यह जिस प्रकार और भी दुर्निमित्तका कारण और महामोहका लक्षण है, उसी प्रकार अप्रबुद्ध (अज्ञान) दशामें आत्मज्ञानका भान (अपनेको ज्ञानी मान लेना) भी मोहाभिभूतके चिह्नके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। स्वप्न टूट जानेपर जिस प्रकार स्वप्नदृष्ट वस्तु कुछ नहीं रहती, केवल स्वप्नदृष्ट ही रह जाता है तथा द्रष्टामें ही स्वप्नदृष्ट समस्त पदार्थोंका अवसान हो जाता है, उसी प्रकार इस जगत्-स्वप्नके टूटनेपर एक परमात्माको छोड़कर और कुछ नहीं रह जाता। जिस प्रकार जाग्रत् होनेपर स्वप्नकी थोड़ी-सी स्मृति बनी रहती है, उसी प्रकार ज्ञानीको यह जगत् एक स्मृतिमात्र जान पड़ता है, आगे चलकर वह भी मिट जाता है।

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[भगवान्‌का भजन करनेमें ही कल्याण है]

सत्संग करनेसे मनुष्यको एक प्रकाश मिलता है। जैसे सब चीजोंके रहते हुए भी अँधेरेमें कुछ नहीं दीखता, पर प्रकाश होते ही सब चीजें दीखने लग जाती हैं, ऐसे ही सत्संग करनेसे सब बातें साफ दीखने लग जाती हैं। जैसे यह बात कि समय जा रहा है, हमारी उम्र बीत रही है। उम्र-रूपी जितनी पूँजी हमारे पास है, उतने ही दिन हम जी सकते हैं, उससे ज्यादा नहीं जी सकते। धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद आदि हमारे जीवनका आधार नहीं है। उम्र खत्म हो जाय तो पासमें लाखों, करोड़ों, अरबों रुपये होनेपर भी मरना पड़ेगा और उम्र बाकी हो तो एक कौड़ी पासमें नहीं हो, कपड़ा नहीं हो, रहनेके लिये जगह नहीं हो, फिर भी कोई-न-कोई ढंग बैठ जायगा और हम जी जायँगे। अत: ये दो चीजें हैं—एक हमारी उम्र है और एक धन-सम्पत्ति है। ऐसे ही एक 'कामना' (इच्छा) होती है और एक 'आवश्यकता' (भूख) होती है। जैसे उम्र और धन-सम्पत्ति दोनों अलग-अलग हैं, ऐसे ही कामना और आवश्यकता दोनों अलग-अलग हैं। जैसे दृष्टान्तके रूपमें शरीरको भूख लगती है तो यह कामना नहीं है, वासना नहीं है, त्याज्य नहीं है, परंतु भोजनमें अमुक चीज चाहिये, खटाई चाहिये, मिठाई चाहिये—यह कामना है, त्याज्य है। भूख तो भोजन करनेसे मिट जायगी, पर कामना नहीं मिटेगी। गाँधीजीने लिखा है कि 'मैंने ऐसे आदमी देखे हैं, जो खाते-खाते पेट भर जाता है तो उलटी करके निकाल देते हैं और फिर खाते हैं।' पेट भर जाता है, पर जीभका चटोरापन नहीं मिटता, इच्छा नहीं मिटती। पेट भर जाय—यह आवश्यकता है। जैसे, सड़कपर गाड़ी चलाते समय कोई गड्ढा आ जाय तो चक्का उसमें फँस जाता है, इसलिये उस गड्ढेको पत्थरसे, सीमेंटसे, मिट्टीसे भर दिया जाय—यह सड़ककी आवश्यकता है, उसकी कमी है। ऐसे ही भूख लगती है तो यह आवश्यकता है, कमी है, जो खाद्य पदार्थ देनेसे पूरी हो जायगी। परंतु तरह-तरहके पदार्थ खानेकी जो इच्छा है, वह कभी पूरी नहीं होगी। भूख (आवश्यकता)-की पूर्ति कर सकते हैं, पर उसे मिटा नहीं सकते, परंतु कामनाकी पूर्ति नहीं कर सकते, उसे मिटा सकते हैं। ऐसे ही हमारी जो संसारकी इच्छा है, वह कामना है और जो परमात्मप्राप्तिकी इच्छा है, वह स्वयंकी आवश्यकता है। यह आवश्यकता कभी मिटेगी नहीं, प्रत्युत पूरी होगी, परंतु संसारकी कामना कभी पूरी होगी ही नहीं। अनन्त ब्रह्माण्डोंका राज्य मिल जाय तो भी कामना कभी पूरी नहीं होगी। कामना दु:खदायी है, पर आवश्यकता आनन्द देनेवाली है। आवश्यकता जाग्रत् हो जाय तो सब कामनाएँ मिट जाती हैं और आवश्यकता पूरी हो जाती है।

परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छाका नाम कामना नहीं है, यह तो आवश्यकता है। जैसे, भूख लगी हो तो चाहे दाल-भात ले लो, चाहे साग-रोटी ले लो, चाहे हलुआ-पूरी ले लो, चाहे कोरा साग खा लो। पेट भर जाय तो फिर शरीर काम देगा; क्योंकि यह शरीरकी आवश्यकता है। ऐसे ही स्वयं (आत्मा)-की आवश्यकता (भूख) है—परमात्मप्राप्ति। परमात्माकी प्राप्ति होनेपर इस आवश्यकताकी सदाके लिये पूर्ति हो जायगी, परंतु सांसारिक धन-सम्पत्ति, वैभव, मान-बड़ाई, भोग आदि कितने ही क्यों न मिल जायँ, उनकी कामना कभी पूरी होगी ही नहीं। जो सत्संग किये हुए नहीं हैं, वे इन बातोंको नहीं समझ सकते। आवश्यकता और कामना—इन दोनोंको अलग-अलग हरेक आदमी नहीं बता सकता। यदि आप ध्यान दें तो आज ही इसको समझ सकते हैं।

एक भूख होती है और एक कामना होती है। भूख वस्तुकी आवश्यकता होती है, पर कामना आवश्यकता नहीं होती।

तनकी भूख इतनी बड़ी आध सेर वा सेर।
मनकी भूख इतनी बड़ी मिट जात गिरि मेर॥

तनकी भूख 'आवश्यकता' है और मनकी भूख 'कामना' है, जब कभी हो, आवश्यकता पूरी होगी और जब कभी हो, कामना निवृत्त होगी। परमात्मतत्त्वकी इच्छा (आवश्यकता) पूरी होनेवाली है और संसारके भोगोंकी तथा संग्रहकी जो इच्छा है, वह कभी भी पूरी होनेवाली नहीं है। संसारमें तो जितना मिल जाय, उतनेमें संतोष कर लेना चाहिये, पर भूख लगी हुई हो तो उसमें संतोष नहीं होता। भूख लगी हो, प्यास लगी हो तो उसमें संतोष कैसे करे? प्यास लगी हो, भीतर जलन हो रही हो तो वह जल पी लेनेसे शान्त हो जायगी। अतः संतोष कामनाके लिये किया जाता है, आवश्यकताके लिये नहीं।

आवश्यकता और कामना—दोनों अलग-अलग हैं। इसका कारण यह है कि जीव परमात्माका अंश है और शरीर संसारका अंश है। इसलिये जीवको परमात्माकी भूख है और शरीरको सांसारिक पदार्थोंकी भूख है। परमात्माकी प्राप्ति होनेपर जीवकी भूख तो मिट जायगी, पर सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति होनेपर शरीरकी भूख नहीं मिटेगी। मेरी ऐसी इच्छा है कि इस विषयको आप अच्छी तरह समझ लें। ये बड़ी विचित्र और गहरी बातें हैं। मैंने देखा है कि बड़े-बड़े विद्वान् भी आवश्यकता और इच्छा—इन दोनोंका विश्लेषण नहीं कर सकते।

आवश्यकताकी पूर्ति होती है और इच्छाकी निवृत्ति होती है। आवश्यकता विचारके द्वारा निवृत्त नहीं होती। चुप भले ही हो जाओ, पर अन्न-जल लिये बिना भूख-प्यास मिट नहीं सकती, जाड़ा लगता है तो कपड़ा ओढ़े बिना जाड़ा मिट नहीं सकता; क्योंकि यह शरीरकी आवश्यकता है। ऐसे ही परमात्माकी प्राप्ति स्वयंकी आवश्यकता है। परंतु इच्छाएँ कभी पूरी नहीं हो सकतीं। भोग भोगना और संग्रह करना—ये दो इच्छाएँ कभी किसीकी पूरी होनेवाली नहीं हैं। मनकी यह भूख पूरी होनेवाली नहीं है।

जो दस बीस पचास भये सत, होइ हजार तु लाख मगैगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य, पृथ्वीपति होनकी चाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल को राज करै, तृस्ना अधिकी अति आग लगैगी।
'सुन्दर' एक सँतोष बिना सठ, तेरी तो भूख कभी न भगैगी॥

जब परमात्माकी तरफ चलोगे, तब संसारसे वैराग्य हो जायगा। भोग और संग्रहकी इच्छा नहीं रहेगी और परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। तात्पर्य है कि कामनाकी निवृत्ति हो जायगी और आवश्यकताकी पूर्ति हो जायगी। इसीके लिये यह मानव-शरीर मिला है।

अब एक दूसरी बात कहता हूँ। मानव-शरीरकी जो महिमा है, वह महिमा इस शरीरकी नहीं है। दो पैर हों, दो हाथ हों, मस्तक हो, ऐसी आकृतिवाला हो—इसकी महिमा नहीं है। इस शरीरको अधम बताया गया है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(रा०च०मा० ४।११।४)

—और इसे उत्तम भी बताया गया है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥

(रा०च०मा० ७।१२१।९)

शरीरको अधम और उत्तम—दोनों बतानेका तात्पर्य क्या है, इसे भी आप समझ लें। जो पांचभौतिक शरीर है, उसकी (ढाँचेकी) महिमा नहीं है, प्रत्युत उसमें जो विवेक-शक्ति है, उसकी महिमा है। सत्-असत्को, नित्य-अनित्यको, सार-असारको, वास्तविक हानि-लाभको, अपने हित-अहितको ठीक पहचाननेकी जो शक्ति (विवेक) है, उसका नाम मानव है। गाय इतनी पवित्र है कि उसका गोबर और गोमूत्र भी पवित्र है। गोबरमें लक्ष्मीका और गोमूत्रमें गंगाका निवास है। सूआ-सूतक दूर करना हो तो गोबरका चौका लगा दो, गोमूत्र लाकर छिड़क दो, शुद्धि हो जायगी। इस प्रकार जिसके गोबर-गोमूत्र भी शुद्ध हैं, उस गायको भी आप यह नहीं समझा सकते कि कल्याण कैसे हो, उद्धार कैसे हो। इसे समझनेकी शक्ति मनुष्यमें है। इस शक्ति (विवेक)-के होनेपर भी अगर मनुष्य इसका उपयोग नहीं करता, इधर ध्यान नहीं देता तो वह मनुष्य नहीं है, पशु ही है। केवल भोग भोगना, संग्रह करना, रुपये कमाना और ऐश-

आराम करना—यह पशुता है, मनुष्यता नहीं है। कई वर्ष पहलेकी बात है, हमारे एक मित्र काश्मीर गये थे। वहाँ एक जगहकी बात उन्होंने बतायी कि वहाँ एक कुत्ता पाला हुआ था। उस समयमें वह पचास पैसेकी मलाई रोजाना खाता था। वह गद्दोंपर बैठता था और ऊपर पंखे चलते थे। नौकर उसको बढ़िया साबुनसे नहलाते थे। जितना आराम उस कुत्तेको मिलता था, उतना आराम हरेक मनुष्यको नहीं मिलता। कलकत्तेमें एक कुत्ता था। उसके लिये तीन कमरे थे। तीनों कमरे पास-पासमें थे। तीनोंमें तख्ते थे और उनके ऊपर बढ़िया गद्दे बिछाये हुए थे। तीनों ही कमरोंमें पंखे चलते थे। कुत्तेकी जैसी मरजी हो, चाहे यहाँ बैठे, चाहे वहाँ बैठे। उस कुत्तेको बम्बई भेजा गया तो नयी फियेट गाड़ी ले करके उसमें भेजा गया। इतना आराम कितने मनुष्योंको मिलता है? आप सुख-आरामके पीछे पड़े हो, संग्रहके पीछे पड़े हो—यह मनुष्यता नहीं है। भाग्यमें हो तो यह सुख कुत्तों और गधोंको भी मिल जाता है, परंतु क्या कुत्तों और गधोंको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है? इसलिये कहा है—

सूकर कूकर ऊँट खर, बड़ पशुअन में चार।
तुलसी हरिकी भगति बिनु, ऐसे ही नर नार॥

अब तीसरी बात कहता हूँ, आप ध्यान दे करके सुनें। मनुष्य प्राप्त कर सकता है तो केवल परमात्माको ही प्राप्त कर सकता है। परमात्माके सिवाय और कुछ प्राप्त कर ही नहीं सकता। मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाकर भोग भोगे, स्वर्गलोकमें जाकर भोग भोगे अथवा इस संसारमें रहकर भोग भोगे, उससे मिला क्या? केवल समय बरबाद हुआ और परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह गये। अगर आप चेत करते तो परमात्माकी प्राप्ति कर लेते। आपने भोगोंको भोगनेमें और संग्रह करनेमें समय लगा दिया तो यह आपके साथ धोखा हो गया, विश्वासघात हो गया। आप कहते हो कि धन मिल गया, मान मिल गया, बड़ाई मिल गयी, पर वास्तवमें मिला कुछ नहीं है। आज मर जाओ तो फूँक निकलते ही कुछ नहीं है आपके पास। अत: मिला कहाँ? मिली हुई चीज तो वह मानी जाय, जो जीते हुए भी साथमें रहे और मरनेके बाद भी साथमें रहे।

सपनेकी सौ मुहरसे, कौड़ी सेर न काम।

कोई कहे कि मैं स्वप्नकी सौ मुहरें देता हूँ, मेरेको बिना लगाया हुआ एक खाली पान दे दीजिये, तो कोई देगा? कोई एक पान भी नहीं देगा। ऐसे ही संसारमें जो धन, सम्पत्ति, वैभव, मकान आदि दीखते हैं, वे सब आँख मिचते ही कुछ नहीं हैं। जैसे आँख खुलते ही स्वप्नकी सम्पत्ति कुछ भी नहीं है, ऐसे ही आँख बन्द होते ही यहाँकी सम्पत्ति कुछ भी नहीं है। ऐसे धन, सम्पत्ति आदिके संग्रहमें आपने समय लगाया तो क्या फायदा हुआ?

कबिरा सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सो जानिये, राम नाम धन होय॥

यदि आपने भगवान्‌का नाम-रूपी धन इकट्ठा किया है तो वह साथ चलेगा, वह यहाँ नहीं रहेगा। परंतु यहाँका धन इकट्ठा करोगे तो राजका टैक्स लग जायगा, चोर चोरी करके ले जायगा, ठग ठगाई करके ले जायगा। भाई-भाई अलग हो जायँगे तो धनका बँटवारा हो जायगा, पर भगवान्‌के भजनका बँटवारा नहीं होगा। एक भाईने भजन किया और एकने नहीं किया, तो जिसने भजन किया, वह उसीका है। धनका तो भार होता है, पर भगवान्‌के भजनका भार (बोझ) नहीं होता। मरनेके बाद भी भगवान्‌का भजन बड़ा भारी काम आता है। भजन करनेवाले शरीर छोड़कर यहाँसे ब्रह्मादिक लोकोंमें जाते हैं तो वहाँ सब उनका आदर करते हैं, उत्थान देते हैं कि ये भगवान्‌के भक्त हैं, भजन करके आये हैं।

मेरे कहनेका तात्पर्य उलटा मत ले लेना कि हम धन कमाना छोड़ दें। छोड़नेको मैं कहता ही नहीं। गृहस्थाश्रममें रहते हुए न्याययुक्त पैसा कमाओ और उसे अच्छे-से-अच्छे काममें लगाओ। इसके लिये मैं मना नहीं करता हूँ, परंतु पैसोंके भरोसे भगवान्‌का भजन छोड़ देते हो—यह गलती करते हो। इस गलतीका सुधार

करो। आप पैसे मत कमाओ, मकान मत बनाओ, आरामसे मत रहो, स्त्री-बच्चोंका पालन मत करो—यह मैं नहीं कहता हूँ, परंतु इसके भरोसे भगवान्‌का भजन छोड़ देना, भगवान्‌को इस्तीफा दे देना मनुष्यता नहीं है। इसमें तो पशु-पक्षी भी लगे हैं। कुतिया भी अपने बच्चोंका पालन करती है और दूसरेके बच्चोंको मार देती है। सुअरनी एक साथ ग्यारह बच्चोंका पालन करती है, परंतु इसमें उसकी कोई बड़ाई नहीं होती।

आप एक-दो दिनके लिये भी कहीं जाते हो तो साथमें पैसे ले जाते हो और पूछते हो कि वहाँ कोई मकान मिलेगा कि नहीं? वस्तुएँ मिलेंगी कि नहीं? कोई सवारी मिलेगी कि नहीं? ऐसे ही जब शरीर छोड़कर यहाँसे जाना पड़ेगा, इस दिनके लिये आपने क्या प्रबन्ध किया है? साथमें आपने क्या लिया है? अगर नहीं लिया है तो उसका दु:ख आपको भोगना पड़ेगा कि दूसरेको? फिर आप समझदार क्या हुए? समझदारी यही है कि मरनेके बाद फिर रोना न पड़े।

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

(रा०च०मा० ७। ४३)

जो अपना उद्धार नहीं करता, उसको सिर धुन-धुनकर पछताना-रोना पड़ता है। क्या करें, कलियुग आ गया, लोग ऐसे हो गये, राजके कानून ऐसे हो गये, झूठ-कपटके बिना काम नहीं चलता—यह बिलकुल झूठा दोष है। कलियुग आया तो बहुत बढ़िया समय आया।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(रा०च०मा० ७। १०३क)

सत्ययुग, त्रेता या द्वापर—कोई भी युग कलियुगके समान नहीं है। कलियुगका ऐसा मौका है, जिसमें बिना प्रयास उद्धार हो जाय। वास्तवमें दोष अपना है, कलियुगका नहीं। वैश्य भाइयोंसे मैं पूछता हूँ कि वस्तुएँ बहुत सस्ती आयें और महँगी बिकें तो आप धनवान् बन जाते हो कि नहीं? वस्तुओंका भाव गिरता है तो लाखोंका घाटा हो जाता है और भाव तेज होता है तो आप मालामाल हो जाते हो। कल्पना करो, एक आदमी डेढ़-दो रुपये मनके भावसे अनाज लेकर रखे हुए है। अब अनाज तीस-चालीस रुपये मन हो गया तो लोग कहते हैं कि बाजार बड़ा खराब हो गया, रोजाना अनाज चाहिये, लायें कहाँसे, परंतु जिसके पास डेढ़-दो रुपये मनके भावसे खरीदा हुआ अनाज पड़ा है, वह क्या कहेगा कि बाजार खराब हो गया? वह तो कहेगा कि मौज हो गयी। ऐसे ही भगवान्‌का नाम लेनेमें जितना समय सत्ययुगमें लगता था, उतना ही समय कलियुगमें लगता है, पर कलियुगमें नामकी कीमत अधिक हो गयी। भगवान्‌का नाम मिलता तो बहुत सस्ता है, पर इसका दाम उठता है कलियुगके हिसाबसे। कितने नफेकी बात है। कैसा सुन्दर अवसर मिला है। ऐसे समयमें अगर कोई सच्चे हृदयसे भगवान्‌के भजनमें लग जाय, सच्चाईका पालन करे, तो बहुत जल्दी कल्याण हो जाय। बेसमझी है खुदकी और दोष देते हैं कलियुगको—

कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ।

मनुष्य-शरीर क्या नरकोंमें जानेके लिये मिला है? आपका भाग्य मामूली नहीं है। भगवान्‌ने विशेष कृपा करके यह मनुष्य-शरीर दिया है। कलियुगका बड़ा सुन्दर मौका, मनुष्यका शरीर, गीता और रामायण, भगवान्‌का नाम, सत्संग—ये सब हमें मिल गये तो हमारेपर भगवान्‌की कितनी कृपा है।

जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये।

(विनय० १३६)

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥

(रा०च०मा० ५। ७। ४)

अच्छी बातें भगवान्‌की कृपासे मिलती हैं। ऐसी बातें मिलनेपर भी हम अपना उद्धार न करें और दोष लगायें काल, कर्म तथा ईश्वरपर—यह गलती है। इसलिये सावधान होकर भगवान्‌के भजनमें लग जायँ। (क्रमश:)

दुर्गासप्तशती : मोक्षदायिनी कथा

(प्रो० श्रीयमुनाप्रसादजी)

मार्कण्डेय-महापुराणके तेरह अध्यायों (अध्याय ८१ से ९३ तक)-को देवीमाहात्म्यम् कहा जाता है। दुर्गापूजाकी चर्चा महाभारतके भीष्मपर्वके प्रारम्भमें भी आती है। श्रीकृष्ण अर्जुनको युद्धमें जानेसे पहले माँ दुर्गाकी पूजा करनेकी सलाह देते हैं। दुर्गासप्तशतीमें गीताकी तरह कुल ७०० श्लोक हैं, इसलिये इसे दुर्गासप्तशतीके नामसे भी जाना जाता है।

आध्यात्मिक दर्शन—दुर्गासप्तशतीमें गीता (४। ७)-की तरह पाप तथा अधर्मके विनाशके लिये दैविक शक्तिके पृथ्वीपर अवतरित होनेकी बात कही गयी है। माँ दुर्गा अपने भक्तोंको आश्वासन देती हैं—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥

(दुर्गासप्तशती ११। ५४-५५)

जब-जब संसारमें दानवी बाधा उपस्थित होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर शत्रुओंका संहार करूँगी। दुर्गासप्तशती शक्तिशाली आध्यात्मिक ऊर्जाका स्रोत है। आदिकालीन शक्तिदेवीकी पूजा तथा भक्तिकर हम अपनी मौलिक शक्तिका विकास तथा विस्तार एवं अपने आध्यात्मिक ऊर्जाके स्तरको ऊँचा करनेमें सक्षम हो जाते हैं। माँ दुर्गाको श्रद्धा, लगन, विश्वास तथा पूरी तन्मयतासे आवाहन किया जाय तो उनकी कृपा एवं आशीर्वादसे हमारे लिये कल्याणके मार्ग स्वयं प्रशस्त हो जाते हैं और हम सभी प्रकारकी बुराइयों तथा नकारात्मक विचारोंसे मुक्त हो जाते हैं। दैविक शक्तिको नारी-शक्तिके रूपमें दिखानेसे दुर्गासप्तशतीमें सांख्य दर्शनकी भी झलक मिलती है।

राजा सुरथ अपना राज-पाट दुश्मनोंके हाथों खोकर बलहीन तथा श्रीहीन होकर भी अपने राज्यके बारेमें सोचकर बड़े दुखी एवं चिन्तित हैं—

दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्यांगेष्वखिलेष्वपि॥

(दुर्गासप्तशती १। ४१)

अर्थात् जो राज्य मेरे हाथसे चला गया है, उसमें और सम्पूर्ण अंगोंमें मेरी ममता बनी हुई है। समाधि वैश्य जो बड़े धनवान् थे, अपनी स्त्री तथा पुत्रोंके द्वारा घरसे निष्कासित होकर भी उनके कल्याणके बारे सोच-सोचकर काफी परेशान हैं—

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्॥

(दुर्गासप्तशती १। ३४)

अर्थात् उन लोगों (पत्नी तथा पुत्रगण)-में मेरे प्रति प्रेमका सर्वथा अभाव है; तो भी उनके प्रति मेरा मन निष्ठुर नहीं हो पा रहा है। मोह तथा लोभ जो इनके दुःखके मूल कारण हैं, उससे कैसे मुक्त हुआ जाय, यही दुर्गासप्तशतीका मुख्य विषय है। राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य माया तथा ममतामें जकड़े जीवके ही प्रतीक हैं। महाभारतमें जिन्होंने सूईकी नोकभर भी जमीन देनेसे इनकार कर दिया तथा द्रौपदीका चीरहरण किया, ऐसे कौरवोंके प्रति भी अर्जुन मोह-वशीभूत हो जाता है। अर्जुन यहाँ जीवात्माका प्रतीक है।

मेधा ऋषि कहते हैं कि मनुष्य तथा अन्य सारे जीव मायाके जालमें फँसे हैं—

लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि।
तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः॥

(दुर्गासप्तशती १। ५३-५४)

अर्थात् मनुष्यगण समझदार होते हुए भी लोभ एवं अपने किये हुए उपकारका बदला पानेके लिये पुत्रोंसे आकांक्षा तथा उम्मीद करते हैं। संसारकी स्थिति (जन्म-मरणकी परम्परा) बनाये रखनेवाली भगवती महामायाके प्रभावद्वारा ये ममतामय भँवरसे युक्त मोहके गहरे गर्तमें गिराये गये हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण भी यही कहते हैं—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप॥

(गीता ७। २७)

हे भरतवंशी अर्जुन! संसारमें इच्छा और द्वेषसे

उत्पन्न सुख-दु:खादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञानताको प्राप्त हो रहे हैं।

बुराईपर अच्छाईकी विजयकी गाथा—अच्छाई तथा बुराई दोनों एक ही ईश्वरके अंश है। असत् और सत्‌की लड़ाईमें सत्‌की विजयके लिये व्यक्तिको अपनी इच्छाओंपर विजय पानी होती है। वध होनेके बाद भी महिषासुर एवं रक्तबीज आदि राक्षसोंकी आत्माएँ समाप्त नहीं हो सकीं और आज भी वे विभिन्न रूपोंमें मनुष्यके अन्दर विद्यमान हैं। ममता, मोह, क्रोध तथा लोभ आदि बुराइयोंको सदाके लिये समाप्त करना असम्भव लगता है। महिषासुर जब माँ दुर्गासे घायल होता है तो अपना रूप भैंसा, सिंह, हाथी, मनुष्य आदि रूपोंमें बदल लेता है। हम एक वस्तु या व्यक्तिके प्रति ममता तथा मोहको समाप्त करनेका प्रयास करते हैं, तो दूसरी वस्तु या व्यक्तिके प्रति ममता हो जाती है। ये राक्षसी प्रवृत्तियाँ अच्छाईसे ही दबायी जा सकती हैं और उन्हें दबा रखनेके लिये अच्छाईको हमेशा बरकार रखनेकी आवश्यकता है। राजा सुरथ तथा समाधि वैश्य अपनी अच्छाइयोंका विकासकर ही ममता-मोहसे मुक्त हो पाये।

मुक्तिके लिये भक्ति ही सुलभ मार्ग—भक्ति-मार्गमें आत्मसमर्पणकी आवश्यकता होती है। आत्मसमर्पणमें अहं स्वयं समाप्त हो जाता है। अहंकी समाप्ति ईश्वरप्राप्तिका प्रथम सोपान है। सारे देवतागण महिषासुर तथा अन्य राक्षसोंसे त्रस्त होकर माँ दुर्गाके आवाहनके लिये भक्तिमार्ग ही अपनाते हैं। राजा सुरथ भक्तिमार्गसे ममतामुक्त हो अपना राज्य पुन: वापस लेनेका वरदान प्राप्त करते हैं। समाधि वैश्य भक्तिमार्गसे ही मोह-पाशसे मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। अर्जुन भी मोहसे मुक्त '**नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा**' (गीता १८।७३) होनेकी बात स्पष्ट रूपसे स्वीकारते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण मोक्षकी प्राप्तिहेतु भक्तिमार्ग ही सुलभ बताते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।

दुर्गासप्तशतीमें पूर्ण समर्पणके साथ भक्ति करनेपर देवी प्रसन्न होकर मोक्ष प्रदान करती हैं—

एभि: स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते य: समाहित:।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम्॥

(दुर्गासप्तशती १२।२)

अर्थात् जो प्रतिदिन इन स्तुतियोंसे मेरा स्तवन करेगा, उसकी सारी बाधा मैं निश्चय ही दूर कर दूँगी। कर्ममार्ग एवं ज्ञानमार्गमें व्यक्तिको हमेशा सावधान तथा जागरूक रहनेकी आवश्यकता होती है जबकि भक्तिमार्ग पूर्ण समर्पणमें सभी विघ्न-बाधाओंसे परिष्कृत रहता है और भक्तकी पतवार प्रभुके हाथोंमें रहती है।

कलात्मक रचना—दुर्गासप्तशती एक धार्मिक कथा है परंतु इसका प्रारम्भ, विकास तथा अन्त कलात्मक है। इसकी प्रस्तुति प्रतीक-नाटक (Allegorical Drama) के रूपमें की गयी है। दानवी प्रवृत्तिपर दैविक शक्तिकी विजय दिखानेके लिये मार्कण्डेय मुनि एक नाटकीय स्थितिकी रचना करते हैं, जिसमें लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकारके पात्र हैं। वे दुर्गासप्तशतीमें राजा सुरथ तथा समाधि वैश्यके अन्तरनिहित एवं स्वजनित लोभ, मोह तथा कायरताका विनाश भगवती दुर्गाके विभिन्न रूपोंके द्वारा महिषासुर, चण्ड-मुण्ड, शुंभ-निशुंभ तथा रक्तबीज आदि राक्षसोंका वध दिखाकर करते हैं। प्रतीकात्मक रूपमें अच्छाई तथा बुराईका संघर्ष मानवीय चेतनाके धरातलपर ही दिखाना उनका उद्देश्य है। सारे राक्षसगण मनुष्यके अन्दर अज्ञानताजनित कायरता, कामना, क्रोध, अहंकार, वर्चस्व, लोभ, मोह आदि अवगुणोंके प्रतीक ही हैं।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोध: पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥

(गीता १६।४)

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी—ये सब आसुरी-सम्पदाके साथ उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

दुर्गासप्तशतीमें आध्यात्मिक अनुभव तथा कल्पनाका बहुत ही सुन्दर विलयन है। मार्कण्डेय मुनि लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकारके पात्रोंकी रचना स्वाभाविक ढंगसे करते हैं और कहानीमें विश्वसनीयता कहीं भी खण्डित नहीं होती है। इसमें आस्था, श्रद्धा तथा अध्यात्म-दर्शनकी अद्भुत धारा प्रवाहित होती है। आवश्यकता है केवल पूर्ण समर्पणके साथ भक्ति-भावना की—

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(दुर्गासप्तशती ११।१२)

कृत्तिवास रामायणमें गंगावर्णन

गोस्वामी तुलसीदासजीके आविर्भावसे प्राय: एक सौ वर्ष पूर्व बंगदेशमें कृत्तिवास नामक एक मनीषी कवि आविर्भूत हुए, जिन्होंने सारे पूर्व भारतमें श्रीरामकी मनोरम लीलाओंका प्रचार किया था। कृत्तिवासका जन्मकाल सन् १४३३ ई० माना जाता है। ये यशस्वी विद्वान् थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता गौड़ेश्वरकी प्रार्थनापर भक्तिमयी रामकथाका बँगला भाषामें प्रणयन किया, जो 'कृत्तिवास रामायण' के नामसे विख्यात हुई।

महाकवि कृत्तिवासने मुख्यत: वाल्मीकीय रामायण, जैमिनीयाश्वमेध, अद्भुत रामायण और अध्यात्म रामायणका अवलम्बनकर कृत्तिवास रामायणकी रचना की। इसके साथ ही पुराण, उपपुराण, दन्तकथाओं और जनश्रुतियोंसे भी उपादान संग्रह किया। कृत्तिवास रामायण आदिकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड—इन सात काण्डोंमें संग्रथित है। इसके आदिकाण्डमें गंगावतरण, भगीरथ-जन्म, गंगामाहात्म्य-सम्बन्धी राजा सौदासका आख्यान, महादेवजीद्वारा गंगाको धारण करना, जह्नुमुनिका गंगापान आदि अनेक आख्यान आये हैं। अन्य काण्डोंमें भी गंगाजीकी यत्र-तत्र चर्चा आयी है। यहाँ हरिगीतिका छन्दमें उपनिबद्ध राजा भगीरथद्वारा की गयी गंगा-प्रार्थनाका हिन्दी काव्यानुवाद दिया जा रहा है।

गंगाजीकी स्तुति

जय त्रिदिव तारणि तापत्रय वारिणि सुमंगल कारिणी।
कलिकलुष हारिणि धरणिपावनि ईश शीश विहारिणी॥
जय भुक्ति मुक्ति प्रदायिनी दुरितोय मर्दनि त्रिपथगा।
जय जह्नु नन्दिनि शुभ सदनि भवभयकदनि देवापगा॥
जय भगवती भागीरथी परमार्थ पंथ प्रदर्शनी।
अघग्रंथि मोचनि नित त्रिलोचन चारु चित आकर्षनी॥
जो जन निवसि शत योजनहु पै नाम तव सुमिरन करै।
सो ह्वै नितांत कृतांत भयते शांत पुनि नहिं तनुधरै॥
सउमंग गंगे तव तरंगे विहग अंगहु गाहहीं।
तेहि संग तुंग तुरंग मातंगय नृपन तुलना नहीं॥
सुर तृप्तिका तव मृत्तिका शुचि भालपट लेपन करे।
अघ ओघ सो इमि वारही जिमि मिहिर निहारहि हरे॥
त्वयि मज्जि दुर्जन सुजन गति इमि दुहुन वेद बखानही।
ह्वै यक समान विमान चढ़ि गीर्वान पुरहि पयानही॥
यत तीर्थ हरिकृत गया मथुरा प्रयागादिक पुण्यदा।
तिन मध्यसार स्वरूपिणी भव वन्दिनी सुरधुनि सदा॥
सातंक कंक के वंक किंकर होहि नित जेहि नामते।
जेहि दिशि प्रयात परात पातक पुंज मनुज शरीर ते॥
कृत्तिवास जेहि सहवास के अभिलाष वश निज शिरधरे।
सब आश तजि कृत्तिवास तेहि पद दास ध्यावत मुदभरे॥
पत दुरित विदलित कारि यह सुरसरि चरित जे गाइहैं।
ते सतत अभिमत प्रयत फल लहि विष्णुधाम सिधाइहैं॥
अघ भंग गंग प्रसंग कालि पुराण मत उलथा किये।
द्विज दीन मथुरा ताहि छन्दोबद्ध किय प्रमुदित हिये॥

इसी प्रकार सौदास-प्रसंगमें भी कृत्तिवासजीने गंगाजीकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है—

अधमतारिणी गंग की महिमा अकथ अपार।
कृत्तिवास अति क्षुद्रमति, वरणौ कौन प्रकार॥

[अनु०—श्रीमथुराप्रसादजी] [प्रेषक—श्रीअवधबिहारीजी शुक्ल]

कविताओंमें गंगा : एक चयनिका

(श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव)

'हरि अनंत हरि कथा अनंता' के समान ही गंगाकी महिमा भी अपरम्पार है; शब्दोंमें उसे पूर्णरूपेण व्यक्त करना सम्भव ही नहीं है तथापि विभिन्न कालोंमें विभिन्न कवियोंद्वारा ***'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥'*** के न्यायानुसार, अपने-अपने रंगोंमें गंगाके विविध शब्दचित्र अंकित किये गये हैं। कुछ ऐसे ही हिन्दू, मुसलिम कवियोंकी गंगाको समर्पित हिन्दी, उर्दू, फारसी भाषाओंकी काव्यांजलियोंकी एक लघु चयनिका प्रस्तुत है।

गंगा भारतीय जनमानसमें, दैनिन्दन जीवनके कार्य-कलापोंमें ऐसी रच-बस गयी है कि अपने वचनकी सत्यताके लिये हम गंगाका ही नाम लेते हैं—

मारे मत मैया वचन भरवाय ले, सौगंध कढ़वाय ले।
गंगा की खवाय ले चाहे, जमुना की खवाय ले॥

किसी स्त्रीको सुहागका आशीर्वाद इससे अच्छा और क्या दिया जा सकता है—

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥

(रा०च०मा० २।६९।८)

प्रत्येक हिन्दू अपने अन्तिम समयमें कुछ इसी प्रकारकी इच्छा रखता है—

श्रीवृन्दावनका स्थल हो, मेरे मुख में तुलसीदल हो।
विष्णु चरण का जल हो, जब प्राण तन से निकले॥

स्वतन्त्र भारतके तो राष्ट्र-गानमें भी 'यमुना-गंगा' हैं। इसी प्रकार डॉ० इकबालके कौमी तराने 'सारे जहाँसे अच्छा' में भी गंगाका उल्लेख है—

ए आबरूद गंगा वह दिन है याद तुझको
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा।

तुलसी और सूरके काव्यमें तो गंगा विविध रूपोंमें प्रचुरतासे परिलक्षित होती ही है। मीरा भी गा उठती हैं—***'चलो मन गंगा जमुना तीर।'*** यहाँतक कि कबीरकी रचनाओंमें भी एक अलग रूपमें गंगा-जमुनाके दर्शन होते हैं—

अरध उरध की गंगा जमुना मूल कमल कौ घाट।
षट चक्र की गागरी त्रिवेनी संगम बाट॥

आदि शंकराचार्य प्रभृति विद्वानोंद्वारा गंगाके स्तोत्रोंकी जो परम्परा प्रारम्भ हुई थी, उसी परम्पराका निर्वाह करते हुए पद्माकर, रत्नाकर, आलम, शेख, सेनापति आदि अनेक परवर्ती रचनाकारोंने गंगाको उसके पौराणिक स्वरूपमें ही अंकित किया है। ऐसी ही एक कविताकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरि-पद-नख-चन्द्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमंडल-मंडन, भव खंडन, सुर सरबस॥
शिव-सिर-मालति-माल भगीरथ नृपति पुण्य फल।
ऐरावत-गज-गिरिपति-हिमनग-कंठहार कल॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन॥

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

गंगाजलकी अलौकिक महिमाका वर्णन करनेका प्रयास अनेक कवियोंद्वारा किया गया है। ऐसी ही कुछ पंक्तियाँ हैं—

मैलन घटावै महातिमिर मिटावै, सुभ
डीठि को बढ़ावै चारि वेदन बतायो है।

× × ×

भव भय भंजन निरंजन के देखिबे कौं
गंगा जू को मंजन सुअंजन बनायो है॥

(सेनापति)

उपदेशात्मक शैलीमें गंगाजलकी महत्ताका कितना रोचक वर्णन इन पंक्तियोंमें है—

चितहिं, चिताउ, भूलि काहु न सताउ, आउ,
लोहै कैसो ताउ, न बचाउ है सरीर कौं।

लेह देह करि कै, पुनीत करि लेह देह,
जीभ अवलेह देह सुरसरि नीर कौं॥

(सेनापति)

गंगाके उज्ज्वल, विमल तथा पावन स्वरूपका, अनुप्रासकी छटासे पूर्ण, सुन्दर वर्णन इस छन्दमें है—

चामर-सी चंदन-सी चन्द्रिका-सी चन्द-ऐसी
चांदनी चमेली चारु चांदी सी सुघर है।
कुंद-सी कुमुद-सी कपूर-सी कपास-ऐसी
कल्पतरु-कुसुम-सी कीरति सी बर है॥
'पूरन' प्रकास-ऐसी साँस-ऐसी हास-ऐसी
सुख के सुपास ऐसी सुषमा की घर है।
पाप को जहर ऐसी, कलि को कहर ऐसी
सुधा की छहर ऐसी गंगाकी लहर है॥

(देवीप्रसाद 'पूर्ण')

गंगाकी छवि जनमानसमें सदासे ही 'पतित-पावनी' के रूपमें रही है। गंगाकी इस भूमिका निभानेके क्या-क्या परिणाम होते हैं, हमने कदाचित् कभी इसपर विचार ही नहीं किया। किंतु 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि!' अत्यन्त ही रोचक यह छन्द प्रस्तुत है—

गंगा के चरित्र लखि भाख्यौ जमराज यह
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै।
कहे 'पद्माकर' नरक सब मूंदि करि
मूंदि दरवाजेन को तजि यह थान दै॥
देखु यह देव नदी कीने सब देव, या तें
दूतन बुलाई कै बिदा कै बेगि पान दै।
फारि डारु फरद, न राखु रोजनामा कहूँ
खाता खति जान दै बही को बहि जान दै॥

(पद्माकर 'गंगा-लहरी' से)

कुछ मिलते-जुलते भावोंका एक अन्य कविका छन्द इस प्रकार है—

कहत विधाता सौं बिलखि जमराज भयौ
अखिल अकाज है हमारी राजधानी कौ।
सुरसरि दीन्हीं ढारि भूप के भुलावै माहिं
कीन्यौ नाहिं नेकहूँ बिचार हित हानी कौ॥
निज मरजाद पै कछू तौ ध्यान दीजै नाथ
कीजै इमि प्रकट प्रभाव बर बानी कौ।
पावे नर नारकी न रंचक उचारि क्यों हूँ
गंगा को गकार औ चकार चक्रपानी कौ॥

(रत्नाकर)

भारतमाताके कण्ठ-हारके रूपमें गंगाका चित्रण कई कवियोंने किया है—

भारति जय विजयकरे! कनक शस्य कमल धरे!
× × ×
गंगा ज्योतिर्जल कण, धवल धार हार गले!

(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला')

निराला प्रयागमें गंगातट स्थित दारागंजवासी थे। अतः गंगातटके दैनिन्दन दृश्योंसे सुपरिचित थे—

आ रे गंगा के किनारे ।
× × ×
पंडों के सुघर सुघर घाट हैं। तिनके की टट्टी के ठाट हैं॥
यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं, कहते हैं कितने तारे।

(निराला)

इन्हींके समकालीन कवि सुमित्रानन्दन पन्त भी प्रयागमें रहे हैं। गंगा सम्बन्धी उनकी कई कविताएँ हैं, किंतु अपने कालाकाँकर (प्रतापगढ़)-प्रवासके दौरान चाँदनी रातमें गंगामें नौका-विहार करते हुए जो शब्दचित्र उन्होंने चित्रित किया है, वह विरल ही है! इसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

शांत स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनंत, नीरव भूतल!
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रांत, क्लान्त, निश्चल!
तापस बाला गंगा, निर्मल, शशिमुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुन्तल!
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुंदर,
चंचल अंचल सा नीलाम्बर!
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर!

(नौका-विहार रचना सन् १९३२ ई०)

गंगाके इस प्राकृतिक रूपको शब्दोंमें पिरोनेवाले इसी कविने गंगाके एक अन्य रूपके भी दर्शन किये हैं। इस दूसरी गंगाके सम्बन्धमें कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

यह भौगोलिक गंगा परिचित, जिसके तट पर बहु नगर प्रथित,
इस जड़ गंगा से मिली हुई, जन गंगा एक और जीवित!
वह विष्णुपदी, शिवमौलिस्रुता, वह भीष्मप्रसू औ जह्नुसुता,
वह देव निम्नगा, स्वर्गंगा, वह सगर पुत्र तारिणी श्रुता!
वह गंगा, यह केवल छाया, वह लोक चेतना, यह माया,
वह आत्मवाहिनी ज्योति सरी, यह भू-पतिता, कंचुक काया!
वह गंगा जन-मन से निःसृत, जिसमें बहु बुद बुद युग नर्तित,
वह आज तरंगित, संसृति के मृत सैकत को करने प्लावित!
दिशि दिशि का जन मत वाहित कर, वह बनी अकूल अतल सागर,
भर देगी दिशि पल पुलिनों में, वह नव जीवन की मृदु उर्वर!

(गंगा रचना सन् १९४० ई०)

उर्दू कवि नजीर बनारसी (जन्म १९०९ ई० तथा मृत्यु १९९६ ई०)-की गंगापर कई रचनाएँ हैं। उनका गंगाप्रेम और उसके प्रदूषणके प्रति चिन्ता तथा व्यथा उनकी रचनाओंमें स्पष्ट परिलक्षित हैं। उनकी एक गजलके कुछ शेर प्रस्तुत हैं—

डरता हूँ रुक न जाए कविता की बहती धारा
मैली है जब से गंगा मैला है मन हमारा।

× × ×

श्रद्धाएँ चीखती हैं विश्वास रो रहा है
खतरे में पड़ गया है परलोक का सहारा।

× × ×

इस पर भी इक नजर कर भारत की राजधानी
किस्मत समझ के जिसको राजाओं ने संवारा।
बूढ़े हैं हम तो जल्दी लग जायेंगे किनारे
सोचो तुम्हीं जवानों क्या फर्ज है तुम्हारा।
कविता 'नजीर' की है तेरी ही देन गंगे
तेरी लहर लहर है उसकी विचार धारा॥

(नजीर बनारसी)

गंगाके साथ ही उसके तटवर्ती तीर्थोंको भी कवियोंने अपनी रचनाओंमें स्थान दिया है। मानसमें गोस्वामी तुलसीदासके प्रयाग-सम्बन्धी वर्णनसे तो पाठक परिचित ही हैं। 'गीतावली' के एक अत्यन्त सुन्दर पदमें राम-चरण-महिमा वर्णित है। इसीमें रूपकके माध्यमसे प्रयागका सुन्दर वर्णन है। पद इस प्रकार है—

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथ-राज बिराजै।
संकर-हृदय-भगति-भूतलपर प्रेम-अछयबट भ्राजै॥
स्यामबरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नखस्रेनी।
जनु रबि-सुता सारदा-सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी॥
अंकुस-कुलिस-कमल-धुज सुंदर भँवर तरंग बिलासा।
मज्जहिं सुर-सज्जन, मुनिजन-मन मुदित मनोहर बासा॥
बिनु बिराग जप-जाग-जोग-ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे॥

(तुलसीदास)

प्रयागके ही सन्दर्भमें प्रसिद्ध उर्दू कवि फिराक गोरखपुरी भी याद आते हैं। प्रस्तुत हैं उनकी कुछ रुबाइयाँ; जिनमें उन्होंने कुछ अलग ही रंगमें गंगा एवं संगमका चित्र खींचा है—

गंगा अस्नान, ये चमकते बजरे
नावों में सवार महजबीनों के परे।
संगम में लगा के गोता उठता है ये कौन
मौजों के भँवर से जैसे जुहरा उभरे॥
गंगा वो बदन, कि जिसमें सूरज भी नहाए
जमुना बालों की, तान बंसी की उड़ाए।
संगम वो कमर, आँख ओझल लहराए
तहे आब सरस्वती की धारा बल खाए॥
गंगा स्नान का ये रेला है कि जुल्फ
पिछले की सुहानी देव बेला है कि जुल्फ।
कुहरे में धुआँ सी उमड़ी हुई भीड़
बढ़ता हुआ कोई माघमेला है कि जुल्फ॥

(रघुपतिसहाय 'फिराक' गोरखपुरी)

हास्यकवि काका हाथरसीने अपनी विशिष्ट शैलीमें वाराणसी और गंगाके सन्दर्भमें अत्यन्त रोचक तथा सजीव शब्दचित्र प्रस्तुत किये हैं, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

चहल पहल हो रही, यात्री नहा रहे हैं
कोई गंगा जी में दीपक बहा रहे हैं।
लक्कड़ वाले बाबा बैठे ताप रहे हैं
पंडा जिजमानों की अंटी नाप रहे हैं॥
सजी धजी नववधू-सरीखी सुघर किश्तियाँ
थिरक रही होंगी गंगा जी के आँचल में।

नावों में भंग घोंट कर, विश्वनाथ का
भोग लगाते भक्त, छान कर गंगाजल में॥
इसी नगर में हरिश्चन्द्र बिकने आये थे
बने डोम के दास धर्म-धक्के खाये थे।
शिव जी के त्रिशूल पर है काशी का पाया
'अस्सीघाट' पर तुलसी ने छोड़ी थी काया॥

काशीके घाट, मन्दिर, संस्कृति, सम्पूर्ण वातावरण ही प्राचीन कालसे आजतक अपने आकर्षणमें सबको बाँधे हुए है। काशीवासी कविके शब्दोंमें काशीका वर्णन—

कासी कहुँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हूँ नहिं तजी, रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत ध्वजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तित ही ठहराई।
गंगा-छबि 'हरिचंद' कछू बरनी नहिं जाई॥

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

नजीर बनारसी वास्तवमें कितने 'बनारसी' थे, यह उनकी गंगा एवं बनारस-सम्बन्धी कविताओंको पढ़कर जाना जा सकता है। बनारसके बारेमें उनकी एक लम्बी नज्मके कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

है रात बाकी हवा के झोंके, अभी से कुछ गुनगुना रहे हैं।
अगर कथा कह रहे हैं तुलसी, कबीर दोहे सुना रहे हैं॥
अमर हैं वो संत और साधु, जो मर के भी याद आ रहे हैं।
जो काशी नगरी से उठ चुके हैं, वह मन की नगरी बसा रहे हैं॥
ये घाट तुलसी के नाम से है, यहीं वो करते थे जाप देखो।
जहाँ पे तुलसी, वहीं पे गंगा, पवित्रता का मिलाप देखो॥

× × ×

मिला है गंगा का जल जो निर्मल उतर के ऊषा नहा रही है।
हवा है या रागिनी है कोई, टहल के वीना बजा रही है॥

× × ×

हर इक पराई नजर से अपनी, नजर बचा कर गुजर रही हैं।
ये देवियाँ हैं मेरे नगर की, जो सीढ़ियों से उतर रही हैं॥
घरों की परियाँ बदन समेटे, उतर के अस्नान कर रही हैं।
जो इनमें अस्नान कर चुकी हैं, किनारे हट के सँवर रही हैं॥

× × ×

पहन के आबे रवाँ की साड़ी, रवाँ है सीमाबवार गंगा।
रवाँ हैं मौजें कि माँ के दिल की तरह से है बेकरार गंगा॥
वो छूत हों या अछूत सबका, उठा के चलती है भार गंगा।
यहाँ नहीं ऊँच नीच कोई, उतारे है सबको पार गंगा॥
'नजीर' अंतर नहीं किसी में सब अपनी माता के हैं दुलारे।
यहाँ कोई अजनबी नहीं है, न इस किनारे न उस किनारे॥

(नजीर बनारसी)

सच ही यहाँ कोई अजनबी नहीं है, गंगा तो सभीकी माँ है। क्या देशी और क्या विदेशी, वह तो सभीको एक-सा प्यार देती है। काशी इसकी साक्षी रही है। प्रसिद्ध सूफी संत कवि शेख अली हजी ईरानवासी थे, किंतु उनकी गंगा-भक्ति उन्हें काशी खींच लायी। अपना अन्तिम समय उन्होंने काशीमें ही व्यतीत किया। काशी तथा गंगाने उन्हें किस प्रकार प्रभावित किया था, यह उनके निम्नलिखित फारसी भाषाके पद्यसे स्पष्ट है—

अज बनारस न रबम माबदे आमस्त ईंजा।
हर बरहमन पेसरे लछमनो रामस्त ईंजा॥
परी रूखाने बनारस ब स द करिश्मो रंग।
पय परस्तिरी महादेव चूँ कुनन्द आरंग॥
ब गंग गुस्ल कुनंद व ब-संग या मालन्द।
जहे शराफते संग व जहे लताफते गंग॥

अर्थात् मैं बनारससे नहीं जाऊँगा; क्योंकि वह सबकी उपासनाका स्थान है। यहाँका प्रत्येक द्विज वटु राम और लक्ष्मण है। परियों-जैसी बनारसकी सुन्दरियाँ सैकड़ों हाव-भावके साथ महादेवजीकी पूजाके लिये निकलती हैं। वे गंगामें स्नान करती हैं तथा पत्थरपर अपने पैर घिसती हैं। क्या ही उस पत्थरकी सज्जनता और क्या ही गंगाजीकी पवित्रता!

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

जगद्‌गुरु

[श्रीरामके वनगमनके समय गुरुदेव वसिष्ठ एवं श्रीरामकी वार्ता]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

श्रीराम-लक्ष्मण और जानकी वन जानेके लिये राजमहलके मुख्यद्वारपर आ पहुँचे। अयोध्याके नर-नारियोंकी भारी भीड़, जो श्रावणी सरिताकी भीषण बाढ़की भाँति बढ़ी आ रही थी, उसे आरक्षी-दल विनम्रतापूर्वक रोकनेके प्रयत्नमें संलग्न था। तभी सचिवोंसे घिरे हुए गुरुदेव भी आ पहुँचे। राम उन्हें आते देखकर रुक गये। गुरुदेव उनके झुके हुए कन्धोंपर हाथ रखते हुए बोले—

'प्रिय रामभद्र! हुआ तो तुम्हारे साथ अन्याय ही है। तुम्हारे पिताने कामके वशीभूत होकर तुम्हें वनवास दे दिया। राजगुरुकी समस्त सामर्थ्य पंगु होकर रह गयी। अस्तु, अब मेरा आदेश है कि इस वसिष्ठका आश्रम भी तो वन-प्रदेशमें ही है। अतः तुम वहीं चलो। अपनी चतुर्दशवर्षीया-वनवासकी अवधि वहीं रहकर सानन्द पूर्ण करो।'

अभी गुरुदेव सम्भवतः कुछ और भी कहते, किंतु स्नेहवश अवरुद्ध हुई उनकी वाणीने उन्हें मौनधारणके लिये बाध्य कर दिया। शेष, जो वे कहना चाहते थे, उसे उनके नेत्रोंमें ठहरे हुए जल-कण बार-बार मनुहारपूर्वक कहे जा रहे थे।

श्रीराम गुरुदेवकी यह अवस्था देखकर संकोचमें भर गये। अपनी वाणीको संयमित करते हुए धीरेसे बोले—

'पूज्यपाद, किसी भी पुत्रके लिये अपने गुरु-माता-पिताकी निन्दा सुनना, प्रायश्चित्तविहीन पाप आप ही ने तो बताया है। क्षमा करें, पिता महाराजने वनवास क्यों दिया, उसके कारण अथवा कारणोंके क्षेत्रमें प्रवेश करना ही नहीं, अपितु उनपर विचार करनेका प्रयत्न करना भी मेरे लिये सर्वथा अनुचित है। इतना ही नहीं, अपितु उनकी चर्चा सुननेके लिये भी मैं सर्वथा अनधिकारी हूँ।'

अभी राम कुछ क्षणोंके लिये बोलते-बोलते रुके ही थे कि महामात्य सुमन्त्र एवं अन्य अमात्यगणोंके नेत्र जैसे धाराप्रवाह मुखर होनेके लिये अकुला रहे हों, इस प्रकार प्रत्येक प्रबुद्धको प्रतीत होने लगा। स्पष्ट था कि श्रीराम लक्ष्मण और जानकीसहित चौदह वर्षोंके लिये गुरुदेवके आश्रममें निवास करनेकी स्वीकृति निश्चितरूपसे ही देंगे; क्योंकि गुरुदेवने 'आदेश' शब्दका प्रयोग जो किया था। मर्यादापुरुषोत्तम उसकी अवहेलना कैसे करेंगे? अतः हमें आश्रममें उनके निवासकी क्या-क्या व्यवस्था कैसे-कैसे करनी है—इस समय वे इसपर विचार कर ही रहे थे कि तभी राम पुनः बोले—

'गुरुदेव! पिता महाराजने किसके वशीभूत होकर वन दिया, यह तो न मैं जानता हूँ और न ही जानना चाहता हूँ, किंतु आप मेरी अविनयको क्षमा करें। मैं वे शब्द खोज नहीं पा रहा हूँ, जो आपसे निवेदनके लिये उपयुक्त हों। फिर भी आप जो अपने आश्रममें वनवासकी अवधि व्यतीत करनेका आदेश दे रहे हैं, यह मैं कैसे कहूँ? जिन्होंने महाराज सगर-असमंजस-अंशुमानसहित श्रद्धेय भगीरथदेवको तपस्याके लिये प्रहर्षित चित्तसे विदा किया, महाराज हरिश्चन्द्रको महारानी एवं युवराजसहित महामुनि विश्वामित्रको राज्यके दानकी दक्षिणा चुकानेके लिये विदा किया, उनकी अवधि तो अनिश्चित थी तो फिर एक निश्चित अवधिके लिये हमें विदा करते हुए आप कैसे विचलित हो रहे हैं? आप हमारी परीक्षा ले रहे हैं, यह भी कैसे कहूँ? यदि यह नहीं है तो फिर यह रघुकुलके राजगुरुका आदेश न होकर, एक मोहासक्त वयोवृद्धका वात्सल्यभाव ही तो कहा जायगा। आपके आश्रममें गुरुकुल-प्रवेश एवं महामुनि कौशिकके साथ तपोवन-प्रस्थानके क्षणोंमें पिताश्री एवं माताओंकी भी यही दशा थी किंतु उन्होंने जिस प्रकार मेरे कल्याणकी कामना करते हुए विदा किया था, उसी प्रकार आशीर्वाद दें। मेरी आपके श्रीचरणोंमें यही प्रार्थना है।'

निरुत्तर महर्षि वसिष्ठके दोनों हाथ आशीर्वादकी मुद्रामें उठे-के-उठे रह गये। राम लक्ष्मण और जानकीसहित जन-समुदायके घेरोंको विनम्रतापूर्वक लाँघते हुए सुमन्त्रद्वारा प्रस्तुत रथपर चढ़ गये।

अपने आश्रमकी ओर प्रस्थान करते हुए राजगुरु महर्षि वसिष्ठके अधरोंपर रह-रहकर एक ही शब्द मँडराने लगा कि 'राम वस्तुतः जगद्‌गुरु हैं। गुरुओंके गुरु-गौरव हैं।'

सुखके साधन

(डॉ० श्रीतारकेश्वरजी मैतिन)

आपने प्राय: अनुभव किया होगा कि हम लोग जिस जाग्रत् समाजके अंश हैं, उसका निरन्तर विस्तार हो रहा है। संख्याकी दृष्टिसे ही नहीं, सीमाओं और सुविधाओंका भी सतत प्रसार चल रहा है। इसका अर्थ है मानवताके मूलभूत आचरणके प्रति हमारे विश्वास और हमारी आशाओंका विस्तार। आज ऐसे बहुत-सारे लोग मिल जायँगे, जो अपनी शान्ति और अपने सुखको ही जीवनकी सफलता मानते हैं। उन्हें ऐसा कभी आभास होता ही नहीं कि ज्ञानकी उपलब्धि और उसकी उपयोगिताकी प्रक्रियाएँ भिन्न होती हैं।

यह एक शाश्वत सत्य है कि सम्पन्नता और समृद्धि केवल अपनेतक सीमित रखना स्वार्थ कहलाता है। जबतक हम अपनी प्राप्तियोंके माध्यमसे परोपकार और समाजकी उन्नतिमें सहयोग न दें, तबतक हमारी एकत्र सम्पत्तियोंकी कोई सार्थकता नहीं होती है। साधना और संघर्ष जीवनके स्वाभाविक तप होते हैं। ऐसा कुछ भी नहीं जो हमें बिना श्रम, बिना कर्म और बिना निष्ठाके प्राप्त हो जाय। चाहे वह शिक्षासे प्राप्त ऊँची डिग्री हो या व्यापारसे प्राप्त मोटा मुनाफा। फिर यह भी एक महत्त्वपूर्ण संकेत है कि हम जब भी, जो कुछ भी करते हों, उसका एक सुनिश्चित और सुनिर्धारित लक्ष्य अवश्य रखें। तभी हम सही मार्गपर आगे बढ़ पायेंगे। हमारा लक्ष्य ही हमारा सबसे सशक्त मार्गदर्शक होता है अन्यथा हम जीवन-भर भटकते रहते हैं। तब हमें बहुधा यही लगता है कि हमारा सारा श्रम व्यर्थ गया। इतनी साधना, इतना त्याग और इतने संघर्षके बावजूद आखिर हमें क्या मिला? निराशा, असफलता, वेदना और उत्साह-विलयन।

यहींपर हमें जीवनकी सुख-शान्तिकी सही परिभाषा स्थापित करनी पड़ती है। स्वयं अपने लिये जीना, मात्र अपने सुखकी कामना करना, जीवन-पर्यन्त भागते-दौड़ते अथाह धन-दौलत एकत्र करना या अबतक जो कुछ भी मिला, जितना कुछ भी मिला, उससे संतोष करना? जो पाया, यदि उसे आपसमें मिल-बाँटकर, एक-दूसरेके सुख-दु:खमें साझेदार बनकर उपयोग कर सकें तो शायद यह एक अनोखी उपलब्धि होगी। दूसरोंको प्रसन्नता देकर, दूसरोंकी खुशी देखकर और दूसरोंकी सहायताकर हमें जो प्राप्त होता है, वह सन्तोषका एक सर्वथा अलग भण्डार है। इसलिये, आज सतत विकसित समाजको केवल अपने हितोंके लिये श्रम करनेसे अधिक समग्र कल्याणकी भावनाको लेकर आगे बढ़नेवालोंकी प्रतीक्षा है। वे, जो अपनेसे पहले दूसरोंकी सोचें, अपने दर्दसे पहले दूसरोंका दर्द महसूस करें, अपने अभावका रोना रोनेसे पहले दूसरोंकी सीमाओंको समझें, समाजके ऐसे सदस्योंके प्रति हमें अनायास ही सम्मान और श्रद्धा जाग उठती है।

बिना संकोच स्वीकार कर लें कि प्रत्येक व्यक्तिके अपने गुण होते हैं। उनकी रचनात्मकता, उनकी क्रियाशीलता और उनका कौशल किसीसे भी कम नहीं। उनकी कर्मठता ही उनकी प्रेरणा होती है। तब क्यों न हम आत्मबलके द्वारा, अपने विवेक, अपने ज्ञान और अपनी शक्तिका एक ऐसा उपयोग करें, जो हमें मात्र सफलता या सम्पन्नता ही नहीं, बल्कि सुख और सन्तोषकी यथार्थ सम्पत्ति भी प्रदान करे। यही हमारी साधना और हमारे संघर्षका सर्वाधिक सुखद प्रतिफल है।

यहाँपर यदि हम धार्मिक दृष्टिकोणको सामने रखें तो कहा गया है कि भोग और संग्रह हमारे दु:खोंके मूल कारण हैं। यह एक ऐसी आसक्ति है, जो पग-पगपर हमें पराजित करती है और पापकी ओर ढकेलती है। सेवाका संस्कार ही सदाचार और सन्मार्ग है। इसलिये, अगर हम समय रहते सचेत हो जायँ, अपने कर्म, अपने श्रम, अपने ज्ञान और अपने उपलब्ध समस्त साधनोंका उपयोग मात्र अपनेतक सीमित न रखकर, बहुजन हिताय-बहुजन सुखायकी प्रतिज्ञाके साथ आगे बढ़ें, तो विश्वास मानें, जीवनकी सार्थकता और शान्ति अनमोल होगी।

हमें प्राय: ऐसा लगता है कि विजय-पराजयका एक अनोखा खेल चल रहा है। चारों ओर लोग

समस्याओंसे जूझ रहे हैं। अगर कहीं कोई समाधान मिलता भी है तो वह एक प्रयोग बनकर रह जाता है और वास्तविक सफलता हमसे दूर होती चली जाती है। कभी आपने सोचा कि ऐसा क्यों होता है ? हम जीवन भी एक खिलौनेकी तरह खेलते हैं। कभी जीतकर भी हार जाते हैं। कभी हारकर भी जीत जाते हैं; क्योंकि हमारी संवेदनामें कहीं कोई कमी है। स्नेह और सहानुभूतिके बिना मानवीय सम्बन्धोंकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसलिये, आवश्यक है कि हम अपने जीवनमें उन शाश्वत, सार्थक और सशक्त मूल्योंके उपार्जन और उनकी सुरक्षाकी ओर ध्यान दें, जो हमें युग-युगतक सम्पन्न रखते हैं।

उत्तरदायी कौन ?

(श्रीरामदेवसिंहजी शर्मा)

लौकिक व्यवहारमें सामान्यतः प्रत्यक्ष दृश्यके रूपमें यथार्थ प्रतीत होनेके कारण लोग समझते और कहते हैं कि अमुकने मेरा नुकसान किया, मुझे यह कष्ट दिया—वह मुसीबत दे दी, मार दिया, गिरा दिया आदि-आदि। पर इस विषयपर गहराईसे सोचनेपर तत्त्वतः यथार्थका प्रत्यक्षीकरण होता है। इस तथ्यको ठीकसे स्पष्टतः समझनेके लिये श्रीमद्भगवद्गीताके विश्वरूप-दर्शनयोग नामक ग्यारहवें अध्यायमें जाना होगा। इसके ३४वें श्लोकमें श्रीभगवान् अपने अतिप्रिय और अभिन्न मित्र, डरे हुए और युद्धसे विराग लिये श्रीअर्जुनसे कहते हैं कि ये सभी शूरवीर प्रतिपक्षी मेरे द्वारा पहलेसे ही मारे हुए हैं। तुम इन्हें मारो या न मारो, ये मरेंगे अवश्य। इन्हें मारनेका माध्यम तुम बनो या कोई और, इनका मरना सुनिश्चित है। इसी परिप्रेक्ष्यमें विचार करें—श्रीभगवान्के इस उद्बोधनके बाद श्रीअर्जुन युद्ध करते हैं और सभी महान् योद्धा मारे जाते हैं तो क्या युद्ध और उन वीरगति-प्राप्त शूरवीरोंके मारे जानेके लिये श्रीअर्जुनको उत्तरदायी बनायेंगे ? कदापि नहीं। ये सभी क्यों मारे गये ? अपने कर्मोंके कारण। यहाँपर पूछा जा सकता है कि दुर्योधनादि तो अपनी अनीति, अन्यायके कारण मारे जानेके पात्र बने। पर भीष्म और द्रोणने तो कोई दुराचार नहीं किया, ये क्यों मरनेके पात्र बने ? यद्यपि यह बात सही है, पर ये भी तो दुर्योधनकी सभी अनीति और अन्यायपूर्ण कुकृत्योंके मूकदर्शक बने रहे, उसका प्रतिकार नहीं किया। अतः ये भी दुर्योधनके कुकृत्योंके सहभागी बने।

वस्तुतः सभी प्राणी अपने पूर्वजन्मोंके कर्मोंके अनुसार वर्तमान योनिमें जन्म लेते हैं और फिर अपने विगत और वर्तमान शुभ या अशुभ, करणीय या अकरणीय कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख पाते रहते हैं। यदि ये कर्म शुभ हुए तो सुख-शान्ति-समृद्धि, वैभव, कीर्ति प्राप्त करते हैं और अगर इनके विगत और वर्तमान कर्म बुरे हुए तो रोग, शोक, आपत्ति-विपत्ति, अशान्ति आदि प्राप्त करते हैं। संत-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी इस सत्यकी पूर्णरूपसे पुष्टि करते हैं—***'करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥'*** आगे और ***'करम बिबस दुख सुख छति लाहू।' 'काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥'*** इन सभी तथ्योंका निष्कर्ष यही हुआ कि मनुष्यके सुख-दुःखादिका कारण उसका कर्म है। प्रत्यक्ष दीखनेवाला व्यक्ति या घटना तो मात्र माध्यम बना। अतः अपने सुख-दुःखके लिये किसी अन्यको हेतु मानकर उससे राग या विराग करना पूर्णतः मूर्खता नहीं तो और क्या है ? अगर इस सत्यको स्वीकार कर लिया जाय, आचरणमें उतारा जाय तो समाज और संसारसे सभी राग या विराग मिट जायँ और संसार सुख-शान्ति, समृद्धि और सहयोगका स्वर्ग बन जाय। दूसरा निष्कर्ष यह कि मनुष्यको सदा शुभ और करणीय कार्य ही करना चाहिये, ताकि शुभ कर्मका उसे शुभ फल ही मिले और अशुभ कर्मोंके अशुभ और दुखद परिणामोंसे अपनेको वंचित कर सके।

राम-नाम क्या है?

[पं० विश्वनाथजीको स्वामी श्रीरामानन्दजीका दिव्य उपदेश]

(श्रीयोगेश्वरजी त्रिपाठी 'योगी')

उन दिनों भगवान् विश्वनाथजीकी नगरी काशीको विद्वानोंका गढ़ समझा जाता था। देश-विदेशके विद्वानोंका आगमन यहाँ शास्त्रचर्चा एवं शास्त्रार्थके लिये प्राय: वर्षभर हुआ करता था। काशीमें पण्डित विश्वनाथ, जो कर्मकाण्डके उद्भट विद्वान् माने जाते थे, उन्होंने बाल ऋषि स्वामी रामानन्दाचार्यजीकी ख्याति सुन रखी थी। अत: अपनी शंकाकी निवृत्तिके लिये उन्होंने आचार्य-प्रवरके दर्शन करनेकी योजना बनायी। उन्होंने पंचगंगाघाटपर स्वामीजीके आश्रममें जाना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उन्हें उनके सत्संगमें रसोपलब्धि होने लगी। वे एकान्तमें स्वामीजीसे वार्ता करनेका सुयोग खोज रहे थे। एक दिन भोरमें भागीरथीमें अवगाहन करके वे सीधे आश्रममें जा पहुँचे। अभी सत्संगका समय नहीं हुआ था। सत्संगी भी नहीं पहुँचे थे। अत: वे स्वामीजीकी भजन-गुफाके बाहर ही स्वामीजीसे आत्मनिवेदनकी स्थितिमें ध्यानमें बैठ गये। वैसे तो स्वामीजीने उनके लिये झरोखा-दर्शनकी व्यवस्था करा रखी थी, परंतु आज उनके आत्मनिवेदनका कुछ ऐसा प्रभाव दिखा कि स्वामीजी परदा हटाकर अपने आसनपर आ विराजे और पण्डितजीसे बोले कि इतने सबेरे कैसे आगमन हुआ? हड़बड़ाकर पण्डितजी उठे और दण्डवत् प्रणाम करके सामने बैठ गये तथा हाथ जोड़कर अपनी जिज्ञासा-निवारणके लिये बोले—भगवन्! तन्त्र, मन्त्र, धर्म, इतिहास एवं अर्थशास्त्र तथा पुराण सभीमें श्रीराम-नाम तथा उसके बीजकी महिमा वर्णित है। विभिन्न मतोंमें निष्ठा रखनेवाले इसी एक रामनामपर आश्रित देखे जाते हैं। इस रामनामकी महिमाके कथनसे उनमें रागदर्शिता ही दिखती है। मरनी, करनी, धरनी, भरनी आदि समस्त लौकिक व्यवहारोंमें इसी रामनामकी प्रतिष्ठा है। इष्ट किसीका कोई भी क्यों न हो, पर उसकी सिद्धि भी इसी रामनामसे प्राप्त होती है। जैसे समस्त देवगण इसी रामनाममें वास करते हैं। यही बात लोकमें भी विख्यात है। भगवान् शंकरका सम्पूर्ण परिवार इसी रामनामका जप करता रहता है। माता पार्वतीके शब्दोंसे जानकारी मिलती है—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

भगवान् शिवके कथनानुसार—

सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥
हरषे हेतु हरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥

गणेशजीके विषयमें भी कहा गया है—

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥

आप भी इसी नामका अनुष्ठान करते रहते हैं। कृपा करके आप हमें यह बतलायें, आखिर यह राम नाम है क्या? हम इसे किस प्रकार समझ सकें, जिससे हमारी प्रतीति एवं प्रीति इसमें उत्पन्न हो जाय।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीने बड़े आनन्दसे मुसकराते हुए कहा कि पण्डितजी! आपकी खोज, आपका संकलन एवं प्रतिपादन सही है, परंतु आपने जो यह पूछा कि आखिर यह राम-नाम है क्या? इसका ज्ञान तो मात्र योगी पुरुषोंको ही निश्चितरूपसे प्राप्त होता है। रामनाम क्या नहीं है? जिसने यह समझ लिया वही जान सकता है कि यह क्या है? जड़तासे रहित और समतासे युक्त विवेकपूर्ण बुद्धि ही प्रतीतिकी जननी है। जब इस प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न हो जाती है तब उस बुद्धिको पात्रता मिल जाती है। इसके फलस्वरूप ऐसी बुद्धि प्रतीतिको जन्म देती है। इसके पश्चात् जब अनन्त जन्मोंके पुण्य प्रताप एवं गुरुजनों तथा माता-पिताके आशीर्वादसे प्राणीका भाग्योदय होता है। उसे समर्थ सद्गुरुकी प्राप्ति हो जाती है, फिर उनके प्रसादसे प्राणीको महामन्त्रका रहस्य भासने लगता है। तब उसमें

उसके प्रति प्रीति जम जाती है। वह हीरा तो हृदयकी पोटलीमें रखा है। आँखकी पुतलीपर दो रुखवाला चश्मा चढ़ा है। इधर देखनेपर प्रपंच और उधर देखनेपर सतपंच दृष्टिगोचर होने लगता है। फिर थोड़ा रुककर पुनः बोले, पण्डितजी! जाग्रत् एवं स्वप्नमें, आचार एवं विचारमें प्रकृतिकी जो क्रीड़ा होती है, उसके मूलमें सत्यता व्याप्त है—वह रामनामकी ही है। जो प्राण वायुमें रकार ध्वनिके रूपमें अनवरत संचरित होती रहती है। श्रेष्ठ मीमांसक, उत्तम आश्रमी, उच्चकोटिके सद्गृहस्थ किसीको भी जिस किसी साधनसे अन्तर्दृष्टि मिल जाती है, वह रकार और मकारको देख लेता है और जगद् ब्रह्म तथा शब्द ब्रह्मके अभेदत्वको जान लेता है। ओंकारका आदि एवं अनादि रूप और उसका प्रत्यक्ष शृंगार सोहंका मूलाधार भी रामनाम ही है। यही रामनाम ध्वन्यात्मक प्रकरणमें तथा गुणातीत दशामें निरन्तर होनेवाले अनहद-नादका सार है। रामनामकी महिमामयी सत्ता ही जीव एवं शिव, प्रकृति तथा पुरुषोत्तमको घट-घटमें प्रतिष्ठित करनेवाली है। परमार्थमें कला कलाधरसे अभिन्न समझी जाती है। इस तत्त्वका सर्वाधिक ज्ञाता ईश्वर ही है। सुषुप्तिका विभु है, जिसमें लय होनेपर जनसाधारणको भी सुख एवं शान्तिका अनुभव होता है जो जीवन जतनके लिये परम आवश्यक है।

प्राणीके लिये जबतक प्राणवायुमें अखण्ड रूपसे संचरित राम-नामकी अनुगुंजित ध्वनि न सुन पड़े। तबतक उसके लिये वैखरी वाणीसे राम-नामकी रट लगाते रहना अत्यन्त आवश्यक है। सबके लिये हर प्रकारका कल्याण करनेवाला परम पावन रकार-मकाररूपी अनमोल रत्न जब समर्थ सद्गुरु प्रसन्न होकर प्रदान करे तभी उसकी प्राप्ति हो सकती है।

इस सदुपदेशसे पण्डित विश्वनाथजीके अन्तर्पटल खुल गये। उन्होंने श्रद्धावनत होकर समर्थ सद्गुरुसे रामनामकी याचना की। स्वामी रामानन्दजीने प्रसन्नतापूर्वक भिक्षामें वह अमूल्य रत्न उन्हें प्रदान करके कृतार्थ कर दिया।

गाण्डीव धनुषका इतिहास

(पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

गाण्डीव धनुषका इतिहास बड़ा रहस्यमय है। इसके इतिहासमें कई धनुषोंका इतिहास छिपा है। यों महाभारतमें तो इसके सम्बन्धमें इतना ही कहा गया है कि खाण्डवदाहके समय अग्निने उसे वरुणसे माँगकर अर्जुनको दिया था (आदिपर्व २२५) तथा महाप्रस्थानके समय उसे वरुणको ही वापस करनेके लिये अर्जुनसे पुनः माँगा और अर्जुनने उसे पानीमें फेंक दिया था (महाप्रास्थानिकपर्व १४१-४२)। विराटपर्वमें स्वयं अर्जुनने इसे ब्रह्मा, इन्द्र, सोम तथा वरुणद्वारा धारण किये जानेकी भी बात बतलायी है।

किंतु यह धनुष वरुणके पास कैसे आया, इस सम्बन्धमें विष्णुधर्मोत्तरपुराणके प्रथम खण्डके ६५-६६-६७ अध्यायोंमें एक बड़ी रोचक कथा आती है। कई पुराणोंमें तथा इसमें भी परशुरामजीके कैलासमें रहकर शंकरजीसे शस्त्र तथा शास्त्रविद्या ग्रहण करनेकी बात आयी है। उनके वहीं रहते हुए इन्द्रकी प्रार्थनापर भगवान् शंकरने परशुरामद्वारा बहुत-से राक्षसोंको भी मरवा डाला। फिर इन्द्रने परशुरामद्वारा पातालवासी राक्षसोंको मरवानेके लिये भगवान् शंकरसे प्रार्थना की। भगवान्ने कहा—'ऐसा ही होगा।' तत्पश्चात् उन्होंने परशुरामजीको बुलाकर कहा कि 'तुम पातालमें जाओ और वहाँके दुराचारी असुरोंका संहार करो। श्रेष्ठ वैष्णव धनुषको मैंने तुम्हारे पिताको दे दिया है। साथ ही इस अक्षय तूणको भी ले लो। इनके सहारे तुम उन राक्षसोंको मार डालो।' फिर तूण देकर भगवान् शंकरने उनसे कहा कि 'देखो, तुम इस तरकसको तो महर्षि अगस्त्यको दे देना और वे उसे अतियशस्वी श्रीरघुकुलभूषण राघवेन्द्र रामको देंगे[१]।

१. अगस्त्यद्वारा श्रीरामको अक्षय तरकस आदि प्रदानकी कथा वाल्मीकि-रामायण, अरण्यकाण्डके १२वें अध्यायके अन्तमें आती है।

तुम भी श्रीरामके दर्शनके बाद शस्त्र मत धारण करना। तुम्हारा अत्यन्त प्रचण्ड वैष्णव तेज रामके मिलते ही देवकार्यार्थ उनमें प्रवेश कर जायगा।'

इसपर परशुरामजीने पूछा कि 'यह वैष्णव धनुष आपके हाथमें कैसे आया तथा वह धनुषोंमें रत्न कैसे हुआ?' शंकरजीने बतलाया कि एक बार वैष्णवी मायासे मोहित होकर देवताओं तथा ऋषियोंने ब्रह्माजीके पास जाकर पूछा कि 'भगवान् वासुदेव तथा महादेवमें कौन बड़ा है?' इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने जो बात बतलायी, वह बड़ी विलक्षण थी। उन्होंने कहा कि 'दोनोंमें तुम युद्ध करा दो। फिर तो अपने-आप पता चल जायगा कि दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है।' फिर क्या था, सबोंने मिलकर हमें लड़ा दिया। वह युद्ध बड़ा ही भयानक था। उसे देखकर सभी जीव डर गये, तब ब्रह्माजीने तथा ब्रह्मर्षियोंने वहाँ आकर प्रार्थना की कि 'आप दोनों ही विश्वके स्वामी हैं। आपलोगोंका युद्ध उचित नहीं। बस, आपके युद्धका निपटारा यों हो जाय कि आप दोनों एक-दूसरेके धनुषको लेकर उसे चढ़ा दें।' इसपर भगवान् विष्णुने तो मेरे चापको आरोपित कर दिया, पर प्रयत्न करनेपर भी मैं वैष्णव-धनुषको चढ़ा न सका।[1] तदनन्तर भगवान् विष्णुके प्रभावको जानकर मैंने उनकी बड़ी स्तुति की।

'मेरी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु बोले—'वस्तुतः हम, आप और ब्रह्माजीमें कोई अन्तर नहीं है। हम तीनों ही तत्त्वतः एक हैं। जो आपको नमस्कार करते हैं, आपकी पराभक्ति करते हैं, वे मेरे धामको प्राप्त होते हैं[2]। अस्तु! अब आप मेरे इस धनुषरत्नको रखें। इसे आप भार्गवनन्दन जमदग्निको दे देंगे। उनसे उनके पुत्र परशुराम ले लेंगे। वे उससे पातालवासी असुरोंका संहार करके श्रीरामको देंगे। अपना कार्य समाप्तकर श्रीरामचन्द्रजी उसे वरुणको दे देंगे। देवकार्यार्थ अर्जुन उसे महात्मा वरुणसे ग्रहण करेंगे। साथ ही अपने इस धनुषको आप जनकको दे दें[3]। वे इस समय निमि नामसे पृथ्वीमें प्रसिद्ध हैं। उस धनुषसे भी वे राजा एक महान् कार्य सम्पादन करेंगे।' यों कहकर भगवान् विष्णु चले गये और मैंने उनके कथनानुसार एकको तुम्हारे पिता तथा दूसरेको निमिको दे दिया[4]।'

भगवान् शंकरकी आज्ञासे परशुरामजीने सब कुछ वैसा ही किया। इसकी विस्तृत कथा वहाँ आगे है। पर इससे स्पष्ट होता है कि वही धनुष परशुरामजीने भगवान् रामचन्द्रको दिया और वही आगे चलकर पुनः वरुणद्वारा अर्जुनको मिला तथा यही वह गाण्डीव था।

---

१. यह नहीं कहा जा सकता कि वैष्णवपुराण होनेके नाते इसमें विष्णुभगवान्का उत्कर्ष दिखलाया गया है, बल्कि निष्पक्ष वाल्मीकि-रामायण, बालकाण्डके ७५वें अध्यायमें भी इस युद्धका वर्णन शब्दोंमें आया है—

शितिकण्ठस्य विष्णोश्च बलाबलनिरीक्षया। अभिप्रायं तु विज्ञाय देवतानां पितामहः॥
विरोधं जनयामास तयोः सत्यवतां वरः। विरोधे तु महद्युद्धमभवद् रोमहर्षणम्॥
तदा तु जृम्भितं शैवं धनुर्भीमपराक्रमम्। हुंकारेण महादेवः स्तम्भितोऽथ त्रिलोचनः॥
देवैस्तदा समागम्य ऋषिसङ्घैः सचारणैः। याचितौ प्रशमं तत्र जग्मतुस्तौ सुरोत्तमौ॥
जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमैः। अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा॥ (वाल्मीकि० ७५। १५—२०)

वाल्मीकिरामायणको विष्णुपरक भी कहना कठिन है; क्योंकि अप्पय्य दीक्षितने बहुत प्रमाणोंसे अपने 'रामायण-तात्पर्य-निर्णय' ग्रन्थमें इसे शिवपरक ही सिद्ध किया है।

२. (क) योऽहं स देवः परमेश्वरस्त्वं योऽहं स देवः प्रपितामहश्च। (विष्णुधर्म० १। ६६। २६)
(ख) भक्त्या च नित्यं तव पूजयन्ति स्थानं हि तेषां सुलभं मदीयम्। (विष्णुधर्म० १। ६६। २९)

३. तच्चापरत्नं भुवि राघवाय प्रदास्यते राम इति श्रुताय। कृत्वा स रामोऽपि हि तेन कर्म प्रदास्यते तद्वरुणाय चापम्॥
तस्मात्समादास्यति फाल्गुनोऽपि देवार्थकार्यैकरतिर्महात्मा। स्वं चापरत्नं जनकाय देहि निमीतिनाम्ना भुवि शब्दिताय॥
(वि० ध० ६७। ३१—३३)

४. 'मानसपीयूष' के सम्पादकने 'करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि दिखाई॥' की व्याख्यामें अनेक टीकाओंसे अनेक रोचक कथाएँ संगृहीत की हैं। किंतु इस कथाका वहाँ उल्लेख नहीं मिलता।

भक्तगाथा

संत श्रीखुशालबाबा

(श्रीपांडुरंग सदाशिवजी ब्रह्मणपुरे 'कोविद')

खान देशमें फैजपुर नामका एक नगर है। वहाँ डेढ़ सौ साल पूर्व तुलसीराम भावसार रहते थे। इनकी धर्मपरायणा पत्नीका नाम नाजुकबाई था। इनकी जीविकाका धन्धा था कपड़े रँगना। दम्पती बड़े ही धर्मपरायण थे। जीविकामें जो कुछ भी मिलता, उसीमें आनन्दके साथ जीवन-निर्वाह करते थे। उसीमेंसे दान-धर्म भी किया करते थे।

इन्हीं पवित्र माता-पिताके यहाँ यथासमय श्रीखुशालबाबाका जन्म हुआ था। बचपनसे ही इनकी चित्तवृत्ति भगवद्भक्तिकी ओर झुकी हुई थी। यथाकाल पिताने इनका विवाह भी करा दिया। इनकी साध्वी पत्नीका नाम मिवराबाई था।

दक्षिणमें 'श्रीक्षेत्रपंढ़रपुर' बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ आषाढ़ और कार्तिक शुक्ला पूर्णिमाको बड़ा मेला लगता है। वैष्णव भक्त दोनों पूर्णिमाओंको यहाँकी यात्रा करते हैं। उन्हें 'वारकरी' कहते हैं और यात्रा करनेको कहते हैं 'वारी।'

ऐसी ही एक पूर्णिमाको श्रीखुशालबाबा 'वारी' करने पंढ़रपुर आये। श्रद्धा-भक्तिसे भगवान् विट्ठलके दर्शन किये और मेला देखने गये। उन्होंने देखा कि एक दूकानमें श्रीविट्ठलका बड़ा ही सुन्दर पाषाण-विग्रह है। बाबाके चित्तमें श्रीविट्ठलनाथके उस पाषाणविग्रहके प्रति अत्यन्त आकर्षण हो गया। उन्होंने सोचा पूजा-अर्चाके लिये भगवान्का ऐसा ही विग्रह चाहिये। उन्होंने उसे खरीदनेका निश्चय किया और दूकानदारसे उस विग्रहका मूल्य पूछा।

दूकानदारने मूल्यके जितने पैसे बताये, उतने पैसे बाबाके पास नहीं थे। दूकानदार मूल्य कम करनेपर राजी नहीं था। बाबाको बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने सोचा— 'अवश्य ही मैं पापी हूँ। इसीलिये तो भगवान् मेरे घर आना नहीं चाहते।' वे रो-रोकर प्रार्थना करने लगे— हे नाथ! आप तो पतितपावन हैं। पापियोंको आप प्यार करते हैं। बहुत-से पापियोंका आपने उद्धार किया है। फिर मुझ पापीपर हे नाथ! आप क्यों रूठ गये? दया करो मेरे स्वामी! मैं पतित आप पतितपावनकी शरण हूँ।

बाबाने देखा एक गृहस्थने मुँहमाँगे दाम देकर उस पाषाण-विग्रहको खरीद लिया है। अब उस विग्रहके मिलनेकी कुछ आशा ही नहीं है। बाबा बहुत ही दुखी हो गये। उस विग्रहके अतिरिक्त उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उनके अन्तश्चक्षुके सामने बार-बार यह विग्रह आने लगा। खाने-पीनेकी सुधि भी वे भूल गये।

रातको कीर्तन सुननेके बाद वह गृहस्थ उस पाषाण-विग्रहको एक गठरीमें बाँधकर और उस गठरीको अपने सिरहाने रखकर सो गया। बाबा भी श्रीविट्ठलका नाम-स्मरण करते हुए एक जगह लेट गये।

भगवान् विट्ठलने देखा कि धनिक भक्तकी अपेक्षा खुशालबाबाका चित्त उनमें अत्यधिक आसक्त है। विग्रहके बिना वह दुखी हो रहा है। भक्तके दु:खसे दुखी होना यह भगवान्का स्वभाव है। गीतामें उन्होंने अपने श्रीमुखसे कहा है—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' इस विरुदके अनुसार खुशालबाबाके पास जानेका प्रभुने निश्चय किया।

मध्यरात्रि हो गयी। गृहस्थ सो रहा था। भगवान्ने लीला करनेकी ठानी, लीलामय जो ठहरे। वे उस गठरीसे अन्तर्धान हो गये और खुशालबाबाके पास आकर उनके सिरहाने टिक गये। कहने लगे 'ओ खुशाल! तेरी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। देख मैं तेरे पास आ गया।' बाबाने आँखें खोलीं। भगवान्को अपने सिरहाने देखकर उन्हें बहुत हर्ष हुआ। वे प्रेममें उन्मुक्त होकर नाचने और संकीर्तन करने लगे।

सुबह वह धनिक भी जागा, उसने अपनी गठरी खोली। देखा तो अन्दर श्रीविट्ठलका विग्रह नहीं है। वह चौंक गया। वह उसकी खोजमें निकला। घूमते-घूमते वह बाबाके पास आया। उसने देखा श्रीविग्रह हाथमें

लेकर खुशालबाबा नाच रहे हैं। उसने बाबापर चोरीका आरोप लगाया और उनके साथ झगड़ने लगा। बाबाने उसे शान्तिके साथ सारी परिस्थिति समझा दी और विग्रह उसे लौटा दिया।

दूसरे दिन रातको भगवान्ने ठीक वही लीला की और बाबाके पास पहुँच गये। बाबाने फिर विग्रह उसे लौटा दिया।

अब उस गृहस्थने कड़े बन्दोबस्तमें उस विग्रहको रख दिया और सो गया। भगवान्ने स्वप्नमें उसे आदेश दिया कि 'खुशालबाबा मेरा श्रेष्ठ भक्त है। वह मुझे चाहता है और मैं भी उसे चाहता हूँ। अब आदरके साथ जाकर मेरा यह विग्रह उसे समर्पण कर दो। इसीमें तुम्हारी भलाई है। हठ करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

बाबा खुशालजी भगवान्के विरहमें रो रहे थे। प्रात:काल वह धनिक स्वयं उस श्रीविग्रहको लेकर उनके पास पहुँचा और बाबाके चरणोंमें वह गिर पड़ा। अनुनय-विनयके साथ उसने वह विग्रह बाबाको दे दिया।

बाबा बड़े आनन्दसे फैजपुर लौट आये। उन्होंने बड़े समारोहके साथ उस श्रीविग्रहकी प्राण-प्रतिष्ठा की।

प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर बाबा स्नान करते और तीन घण्टे भजन-पूजन करते। तदनन्तर जीविकाका धन्धा करते। सायंकाल भोजनके बाद भजन-कीर्तन करते। काम करते समय भी उनके मुखसे भगवान्का नाम-स्मरण अखण्ड चला करता था।

भगवान्की कृपासे यथासमय बाबाके एक कन्या हुई थी, कन्या विवाह-योग्य हो गयी। बाबाकी आर्थिक स्थिति खराब थी। पासमें धन नहीं था। विवाह करना आवश्यक था। अन्तमें लखमीचंद नामक एक बनियेसे उन्होंने दो सौ रुपये उधार लेकर कन्याका विवाह कर दिया।

ऋण चुकानेकी अन्तिम तिथि आ गयी। बाबाके पास कौड़ी भी नहीं थी। बनियेका सिपाही बाबाके दरवाजेपर बार-बार आकर तकाजा करने लगा। बाबाने उससे कहा—'मैं कल शामतक पैसेकी व्यवस्था करता हूँ। आप निश्चिन्त रहिये।'

बाबाको दूसरे दिन बनियेके पास जाना था, किंतु किसीने भी ऋण देना स्वीकार नहीं किया। पड़ोसके एक-दो गाँवोंमें जाकर बाबाने पैसे लानेकी कोशिश की, परंतु नहीं मिले। दूसरे दिनतक पैसे नहीं लौटाये जाते हैं तो बनिया लखमीचंद उनके घरको नीलाम करा देगा। बाबा चिन्ता करते हुए लौट आये।

इधर भक्तवत्सल भगवान्को भक्तकी इज्जतकी चिन्ता हुई। आखिर ऋणको चुकाना ही था। क्या किया जाय? भगवान्ने दूसरी लीला करनेका निश्चय किया।

भक्तवत्सल भगवान्ने मुनीमका वेष धारण किया। वे उसी वेषमें लखमीचंदके घर गये। उन्होंने सेठजीको पुकारकर कहा—'ओ सेठजी! ये दो सौ रुपये गिन लीजिये। मेरे मालिक खुशालबाबाने भेजे हैं। भली-भाँति गिनकर रसीद दे दीजिये।' लखमीचंदने रकम गिन ली और रसीद लिख दी। भगवान् रसीद लेकर अन्तर्धान हो गये और बाबाकी पोथीमें वह रसीद उन्होंने रख दी।

दूसरे दिन बाबाने स्नान करके गीताकी पोथी खोली। देखा तो उसमें रसीद रखी है। रसीद देखकर बाबा आश्चर्यचकित हो गये और भगवान्को बार-बार धन्यवाद देकर रोने लगे। बाबाने सोचा जरूर ही वह बनिया पुण्यवान् है। इसलिये तो भगवान्ने उसे दर्शन दिये। मैं अभागा पापी हूँ। द्रव्यका इच्छुक हूँ। इसीलिये भगवान्ने मुझे दर्शन नहीं दिये। उनके महान् परिताप और अत्यन्त उत्कट इच्छाके कारण भक्तवत्सलने द्वादशीके दिन खुशालबाबाके सम्मुख प्रकट होकर दर्शन दिये।

उसी गाँवमें लालचन्द नामका एक बनिया, जिसे मराठीमें 'वाणी' कहते हैं, रहता था। उसने नित्य पूजाके लिये भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और भगवती सीताके सुन्दर-सुन्दर विग्रह बनवाये। रातमें जब वह सो गया तो भगवान् श्रीरामचन्द्र स्वप्नमें आये और उन्होंने उसको आज्ञा दी—लालचन्द! हम तुमपर प्रसन्न हैं किंतु हमारी इच्छा तेरे घरमें रहनेकी नहीं है। हमारा भक्त खुशाल इसी नगरमें रहता है। उसको तू अब सब विग्रह अर्पित

कर। जब भी तुझे दर्शनकी इच्छा हो, तभी वहाँ जाकर दर्शन कर लेना। इसीमें तेरा कल्याण है। मनमानी करेगा तो मैं तुझपर रूठ जाऊँगा।

सुबह नित्यकर्म करनेके बाद लालचन्द बनिया वे सब विग्रह लेकर बाबाके चरणोंमें उपस्थित हुआ। बाबासे स्वप्नके विषयमें निवेदन करके उसने वे सब विग्रह उनको समर्पित कर दिये।

बाबा खुशाल भक्ति-प्रेमसे उन विग्रहोंकी पूजा करने लगे। उन्होंने नगरवासियोंके सम्मुख भगवान्‌का मन्दिर बनवानेका प्रस्ताव रखा। नगरवासियोंने हर्षके साथ उसे स्वीकार किया और सबके प्रयत्नसे भगवान् श्रीरामका भव्य मन्दिर बन गया। वैदिक पद्धतिसे बड़े समारोहके साथ उन विग्रहोंकी प्रतिष्ठा मन्दिरोंमें की गयी। आज भी संत श्रीखुशालबाबाकी भक्तिका परिचय देता हुआ वह मन्दिर खड़ा है।

वृद्धावस्थामें जब बाबाने देखा कि अब मृत्यु आ गयी है, तब वे संसारकी सारी आसक्ति स्वरूपतः निकालकर अनन्य चित्तसे भजनानन्दमें निमग्न रहने लगे। कहते हैं उन्होंने अपना मृत्युकाल निश्चित रूपसे अपने मित्र मनसारामको पहले ही बता दिया था। ठीक उसी दिन कार्तिक शुक्ला चतुर्थी शक १७७२ को भगवान्‌का नामस्मरण करते हुए बाबा भगवान्‌की सेवामें सिधार गये।

उनके पुत्रका नाम श्रीहरीबुवा था। वे भी पिताके समान ही बड़े भगवद्भक्त थे। उनके पुत्र रामकृष्ण और रामकृष्णके पुत्र जानकीराम बुवा भी भगवद्भक्त थे।

खुशालबाबाने काव्य-रचनाएँ भी की हैं। 'करुणास्तोत्र', 'दत्तस्तोत्र', 'दशावतारचरित' आदि उनके ग्रन्थ हैं। गुजराती भाषामें लिखे हुए उनके 'गरबे' प्रसिद्ध हैं। आज भी तद्देशीय लोग उन्हें गाते हैं।

सुरसाका मुँह

(श्रीओमप्रकाशजी पोद्दार)

जबतक हमारी मूलभूत आवश्यकताओं—रोटी, कपड़ा और मकानकी पूर्ति नहीं होती, तबतक हम लक्ष्मीजीके दास बने रहते हैं। हमारा कद छोटा रहता है। लेकिन जब हमारी मूलभूत आवश्यकताओंकी पूर्ति यथेष्ट होने लगती है तो हम लक्ष्मीजीकी दासतासे छूट जाते हैं। हमारा कद बढ़ने लग जाता है। हमारे आस-पासके लोग हमें बौने लगने लग जाते हैं।

जब हमें थोड़ी-सी सम्पदा, सत्ता, सम्मान और मिल जाता है तो हम अपने आपको लक्ष्मीपति (विष्णु), शक्तिपति (शिव), विद्यापति (ब्रह्मा) समझने लगते हैं। इस प्रकार हमारी लालसाका कद और बढ़ता है, हमसे भी दुगना हो जाता है। आसमानको छूने लग जाता है।

ऐसेमें कोई हनुमान् ही होता है, जो सुरसाके मुँहमें घुसकर वापस लौट आता है। बाकी लोग तो उसके मुँहमें घुसकर वापस लौट ही नहीं पाते। वहीं खप जाते हैं; क्योंकि वे अपना कद छोटा नहीं करते।

इसीलिये कहा गया है—

विवेकः सह सम्पत्या विनयो विद्यया सह।
प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं चिह्नमेतन्महात्मनाम्॥

हम नहीं जानते कि जरूरतसे ज्यादा धन हमें ही भोगता है, सत्ता हमें ही मारती है और सम्मान हमें दीमककी तरह चाट जाता है। इसलिये हे मन—

भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, गोविन्दम् भज मूढ़मते!

मुखमें भगवान्‌का नाम रहेगा और हाथमें भगवान्‌का काम रहेगा तो हम सुरसाके मुँहमें घुसकर भी निकल आयेंगे और बड़ा-से-बड़ा सागर भी पार कर लेंगे। हनुमान्‌जी भी तो इसी प्रकार सागर लाँघ गये थे।

'प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माँहीं, जलधि लाँघि गए अचरज नाहीं॥'

कहानी—

स्वाभिमानके वास्ते

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

बिशेसर बहुत वर्षों बाद बम्बईसे राजस्थान अपने गाँव आया था। साथमें पत्नी और बच्चा भी था। दो-तीन नौकर-दाई भी थे। बहुत बड़ा कारोबार छोड़कर, १०-१५ दिनोंके लिये वह आता तो नहीं, परंतु बच्चा वर्षों बाद हुआ था। उसके मुण्डनकी मनौती थी—सालासरके हनुमानजीकी। पत्नी बहुत बार याद दिला चुकी थी, इसीलिये आना पड़ा। गाँवमें उसके मामा-मामी थे, जिन्होंने उसे पाल-पोसकर और पढ़ा-लिखाकर होशियार किया था, अत: उसने अपनी सूनी हवेलीमें न रुककर ननिहालमें ही ठहरना उचित समझा।

बम्बईके अपने कारोबारमें उसे अभूतपूर्व सफलता मिली थी, इसीलिये पिछले पन्द्रह वर्षोंसे रहन-सहन एकदम बदल गया था। वहाँके बँगलेमें एयर-कंडीशनर, बेहतरीन फर्नीचर, बड़ी-बड़ी मोटरें और अन्य सब प्रकारकी सुख-सुविधाएँ थीं।

देशमें मामाकी गल्लेकी छोटी-सी दुकान थी। गरीबी तो नहीं थी, फिर भी साधारण-सा घर था। मामी चूल्हे-चौकेसे लेकर घरको झाड़ने-बुहारनेतकके सब काम अपने हाथोंसे ही करती थी। बिशेसर और उसकी पत्नीको किसी प्रकारकी असुविधा न हो, इसलिये मामीने एक कमरेको अच्छी तरह सजा-सँवार दिया था। दो-एक निवारके पलंग डाल दिये थे। आगरेकी एक दरी बिछा दी थी।

सुबह मामीने चाय-नाश्ता दिया तो बिशेसरने देखा कि चीनी-मिट्टीके बर्तनोंकी जगह काँसेके बर्तन हैं। खैर, वह मामीका बहुत अदब रखता था, इसलिये कुछ बोला नहीं, परंतु उसकी पत्नीने तो कह दिया—'मामीजी, इस प्रकारके बर्तनोंमें तो हमारे यहाँ दाई-नौकर भी चाय नहीं पीते।' मामीके मनपर चोट तो लगी, पर वे कुछ बोली नहीं।

दूसरे दिन पासके शहरसे बिशेसरके दो मित्र मिलने आये। मामा भी वहीं बैठे थे, परंतु वे देहाती वेश-भूषामें थे, इसलिये बिशेसरने मित्रोंसे उनका परिचय कराना उचित नहीं समझा। उसी दिन वह बाजारसे स्टेनलेस-स्टीलके बर्तन, एक अच्छा टी-सेट और बहुत-सा सामान खरीदकर ले आया। मामीके पूछनेपर बोला कि उसके दोनों मित्र बड़े आदमी हैं, वे भला काँसेके बर्तनोंमें भोजन कैसे करेंगे?

मामी बड़े घरकी बेटी थी। उसके पीहरमें स्टीलके सिवा चाँदीके बर्तन भी थे, किंतु अपने घरमें हैसियत और आयके अनुसार सँभालकर खर्च करती थी, पर उसमें स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा था। उसे बहूका तौर-तरीका अच्छा नहीं लगा। उसकी बातचीतमें धनके अभिमानकी स्पष्ट झलक दिखायी दी। फिर भी मामीने सोचा कि दो-चार दिनोंकी ही तो बात है, अत: चुपचाप सह लेना ही उचित होगा।

एक दिन बिशेसर और उसकी पत्नी बातें कर रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि मामी पास ही रसोईमें हैं। पत्नी कह रही थी, 'अच्छा किया, जो आपने तीन-चार सौ इन सारी चीजोंपर खर्च दिये। इनका भी तो हमारे ऊपर खर्च हो जायगा। देखती हूँ कि मामाजीकी हालत अच्छी नहीं है। स्वयं तो वे शायद ही कुछ कहें।'

थोड़े दिनों बाद ही वे बम्बईके लिये रवाना हुए। बिशेसरने औपचारिकताके तौरपर मामीसे कहा कि मुझे यहाँ आकर बहुत अच्छा लगा, बचपनके दिन याद आ गये। बहुत बार आनेकी सोचता रहा, परंतु कामके झंझटोंसे आ नहीं सका। एक बार तो उसके जीमें आया, मामीको बता दूँ कि उनके लिये स्टीलके अच्छे बर्तन और टी-सेट छोड़कर जा रहा हूँ, परंतु फिर सोचा कि दो-चार दिन बाद उन्हें स्वयं ही पता चल जायगा। ट्रेनके पहले दर्जेके डिब्बेमें सारे सामान रख दिये गये। मामीने रास्तेके लिये खाने-पीनेकी अनेक तरहकी सामग्री दी और विदाके समय पुन: आनेका आग्रह भी किया, परंतु दो-तीन दिनोंसे उसके चेहरेपर संजीदगी-सी थी, जो बिशेसरसे छिपी नहीं रही।

अगले स्टेशनपर जब खाने-पीनेके सामानकी टोकरी खोली गयी, तो देखा कि सारे बर्तन, टी सेट तथा जो दूसरे सामान, जिन्हें वे खरीद लाये थे, सहेजकर रखे हुए हैं। साथमें एक पुर्जा भी था, जिसपर लिखा था कि हम आप लोगोंकी तरह धनवान् नहीं हैं, परंतु घर आये मेहमानोंसे रहने-खानेके बदलेमें कुछ कीमत लेनी पड़े, ऐसे गरीब भी नहीं।

पति-पत्नीके चेहरे शर्मसे झुक गये। वे मन-ही-मन अपनेको छोटा बहुत-बहुत छोटा अनुभव कर रहे थे।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

स्वतन्त्र साधनके लिये प्रेरणा और उसका स्वरूप

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधकको चाहिये कि चित्त-शुद्धिके लिये अपनी योग्यता और रुचिके अनुरूप ऐसे साधनको अपनाये, जो किसी दूसरेपर अवलम्बित न हो अर्थात् जिसमें अपनेसे भिन्न किसी व्यक्ति, पदार्थ, स्थान या परिस्थितिके सहयोगकी आवश्यकता न हो और जो सर्वथा स्वतन्त्र हो।

वेदान्तमें जो विवेक, वैराग्य, शमदमादि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुता—ये चार साधन बताये हैं, उनमें भी साधक सर्वथा स्वतन्त्र नहीं होता; क्योंकि इन्द्रियोंको वशमें करना, मनको वशमें करना, शीतोष्णको सहन करना आदि साधनोंके लिये शरीरमें बल चाहिये।

इसी प्रकार तप करनेमें, दान देनेमें, तीर्थ-सेवन करनेमें, एकान्तवास करनेमें अथवा किसी प्रकारकी परिस्थितिको बनाये रखनेमें भी मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है।

जबतक साधक यह सोचता रहता है कि जब अमुक तीर्थमें जाऊँगा तब साधन करूँगा, ऐसा वातावरण मिलेगा तब साधन करूँगा, शरीर स्वस्थ होगा तब साधन करूँगा इत्यादि, तबतक जीवनका अमूल्य समय यों ही चला जाता है, साधनमें प्रवृत्ति नहीं होती।

जो साधक अपने साधनमें दूसरेके सहयोगकी आशा रखता है या उनकी सहायता लेता रहता है, उसका उन व्यक्तियोंमें मोह और पदार्थोंमें आसक्ति हो जाती है, अत: चित्त शुद्ध नहीं हो सकता।

विश्वास, त्याग, प्रेम और कर्तव्य-पालन—इन साधनोंमें मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र है। किसी भी व्यक्ति या वस्तुका संयोग करना मनुष्यके हाथकी बात नहीं है, परंतु त्यागमें कठिनाई नहीं है। इसी प्रकार विश्वासके लिये भी किसीके सहयोगकी जरूरत नहीं है। जब चाहे अपने इष्टपर मनुष्य विश्वास कर सकता है। प्रेममें भी परतन्त्रता नहीं है। हरेक प्राणी प्रेम करनेमें स्वतन्त्र है एवं अपना कर्तव्य-पालन करनेमें भी किसी प्रकारकी परतन्त्रता नहीं है; क्योंकि प्राप्त विवेकका आदर और प्राप्त बलका सदुपयोग ही उसका कर्तव्य है, जो हर मनुष्य हरेक परिस्थितिमें कर सकता है। संसार और शरीरसे विमुख होकर अपने-आपको प्रभुके समर्पण करके उनपर निर्भर रहनेमें, उनकी अहैतुकी कृपाके आश्रित हो जानेमें किसी प्रकारकी भी कठिनाई नहीं है। अत: यह साधन अत्यन्त सुगम और अमोघ है।

जो मनुष्य दूसरोंकी उदारतासे उनके त्याग, परिश्रम एवं कर्तव्य-परायणतासे अपने अधिकारको सुरक्षित रखता है, अपने मनकी बात पूरी करता रहता है तथा अपने मनकी बात पूरी न होनेपर उनके कामोंमें दोष निकालता है और उनपर क्रोध करता रहता है, उसका चित्त शुद्ध नहीं हो सकता। हाँ, जो लोग उसका आदर करते हैं, उसके अधिकारकी रक्षाके लिये अपने कर्तव्यका पालन करते हैं, क्रोध करनेपर भी नाराज नहीं होते, प्रत्युत अपने ही दोषका अनुभव करते हैं एवं अपना कोई अधिकार नहीं मानते, उनका चित्त अवश्य शुद्ध हो सकता है, उनका व्यवहार अवश्य साधन माना जा सकता है; परंतु यदि वे भी वही काम किसी सांसारिक सुखके लालचसे या किसी प्रकारके भयसे करते हैं, चित्त-शुद्धिद्वारा अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके उद्देश्यसे नहीं करते तो उनका भी चित्त शुद्ध नहीं हो सकता।

अत: साधकको चाहिये कि साधनके लिये किसी भी व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति और स्थान आदिकी आशा न करे। जब जो परिस्थिति अपने-आप प्राप्त होती रहे—उसे प्रभुका विधान, उनकी अहैतुकी कृपा मानकर साधनपरायण हो जाय और उस प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करता रहे अर्थात् किसीपर अपना अधिकार न माने और दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करता रहे तथा अपने शरीर और प्राप्त पदार्थोंद्वारा ऐसी सेवा, जिसमें उनका हित और उनकी प्रसन्नता निहित हो, करता रहे और किसी प्रकारके अभिमानको स्थान न दे।

शक्तिका संचय कीजिये

(श्रीअखिल विनयजी)

शक्तिकी महत्ताको जानकर अपनी शक्तिको नष्ट होनेसे बचाइये। जिस प्रकार कृषक पानीकी प्रत्येक बूँदको खेत और बागके उपयोगमें लाता है और जिस भाँति इंजीनियर पानीके झरनेकी शक्तिको केन्द्रितकर, बिजली बनाकर अनेकों प्रकारसे उपयोगी बनाता है, उसी प्रकार हमें अपनी शक्तिको फ़िजूल कामोंमें खर्च न कर, आत्मविचार और जीवनोद्देश्यके पथको प्रशस्त करनेमें लगाना चाहिये। बड़ा आदमी वह नहीं है जिसके पास ढेर-सी सम्पत्ति हो। बड़ा आदमी वह है, जो निष्काम भावसे सेवा करना जानता है, जो सहृदय है, जिसने ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य आदि गुणोंको अपना लिया है, जिसे अपने शास्त्रोंका ज्ञान है और जो तदनुसार जीवनमें आचरण करता है। चाहे वह व्यक्ति कुरूप ही क्यों न हो, गरीब ही क्यों न हो, चाहे उसके पास पहननेको फटे-पुराने कपड़े हों। चाहे वह रूखी-सूखी रोटी खाता हो, तो भी वह दुनियाका एक महापुरुष है।

शक्तिको नष्ट करनेके तीन महाद्वार हैं—(१) उपस्थेन्द्रिय, (२) मुँह, (३) मन। हमारा जितना अनिष्ट उपस्थेन्द्रियके द्वारा होता है, उतना किसीसे भी नहीं; शत्रुसे भी नहीं। क्या कभी बैठकर इस विषयपर विचार किया कि इससे कितनी शक्ति नष्ट होती है? जाने या अनजाने कामासक्त हो एक अमूल्य चीज पानीकी तरह क्षणिक सुखके लिये बहा दी जाती है। यौवनका जोश इस वस्तुके मूल्यको आँकने ही नहीं देता और रुपये-पैसेमें इसका मूल्य आँका ही नहीं जा सकता। इस चीजको एक बार खो देनेपर फिर किसी भी मूल्यपर प्राप्त नहीं किया जा सकता। आत्मसाक्षात्कार या प्रभु-मिलन ही जीवनका परम ध्येय है, इसलिये वीर्यकी प्रत्येक बूँदका संरक्षण कीजिये। वीर्य ही परमशक्ति है, समस्त तेजोंका तेज है। वीर्यको स्थायी ओजमें परिवर्तित कीजिये ताकि बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बढ़े और सुख-शान्तिका मार्ग सुगम हो। क्षणिक सुखके लिये ऐसी अमूल्य वस्तुको नष्टकर अपने-आपको नष्ट करनेमें कौन-सी बुद्धिमत्ता है?

मुँहसे हम अपने भावोंको व्यक्त करते हैं, लेकिन ध्यान रहे, बोलनेसे बड़ी शक्ति नष्ट होती है। उतना ही बोलिये, जितनेमें आपके आवश्यक कार्य सम्पन्न हो जायँ। पहले शब्दको तौलो और फिर मुँहको खोलो। यदि आप अनर्गल वार्त्तालाप नहीं करते हैं तो आपकी वाणी भी ओजस्विनी बन जायगी। नित्यप्रति प्रातः कुछ समय निर्वाक् बैठिये और मौन रखिये। भले-बुरे संकल्पोंको भी कुछ समयके लिये रोक दीजिये, इससे आप वागिन्द्रियपर काबू पा सकेंगे। आप अमित शक्ति अपने अन्दर इकट्ठी कर सकेंगे। यहाँ महामौनके भीतर ही प्रभुका अस्तित्व मिल सकता है। ईश्वरकी भाषा मूक है। एकाग्रचित्त होकर उस मूक भाषाको, ध्वनिरहित ध्वनिको, अन्तश्चेतनाकी पुकारको ध्यानसे सुनिये।

व्यर्थकी बातों, गप्पों, मजाकों और सब प्रकारकी फिजूल सांसारिक चर्चाओंसे मुँहके द्वारा शक्तिका ह्रास होता है। अधिक बोलनेवाले व्यर्थके विवादमें अपनी शक्तिका बिना कारण अपव्यय करते हैं। आप कंजूससे सबक सीखिये। कंजूसके धनकी भाँति हमें अपने शक्ति-धनको सुरक्षित रखना चाहिये। व्यर्थकी बहस करना छोड़िये। हँसना स्वास्थ्यके लिये अच्छा है लेकिन अत्यधिक हँसनेसे भी शक्ति विनष्ट होती है। भद्दे मजाक और हँसी-ठट्ठोंमें भूलकर भी संलग्न न होइये, ये आपकी शक्तिके घुन हैं। सत्संग और स्वाध्यायके द्वारा निरन्तर शक्तिको बढ़ानेकी ही कोशिश कीजिये।

मन बड़ा चंचल है। अभी यहाँ है, थोड़ी-सी देरमें सात समुद्र पारकी सोच रहा है। अभी भूतकालपर टीका-टिप्पणियाँ कर रहा था और अब भविष्यकी ऊँची-ऊँची योजनाएँ गढ़नेमें व्यस्त है। मन आपका सबसे बड़ा मित्र है और इससे बड़ा आपका दुश्मन भी शायद ही कोई हो। बुरे कामोंकी ओर लगा हुआ आपका मन जितना अहित कर सकता है, उसकी कोई माप ही नहीं है और शुभ कर्ममें लगनेपर यही है जो डाकू वाल्मीकिसे ऋषि वाल्मीकि बना सकता है। शक्तिके इन तीनों विनासकारी

द्वारोंका अपूर्व सामंजस्य है। जहाँ आपने एककी भी उपेक्षा की, वहाँ झट दूसरा दण्ड दे देता है। सतत भगवद्-चिन्तनद्वारा मनको पवित्र करो। मनको शान्त करो, उठते हुए भक्ति-भावों तथा बकवादी विचारोंको समाप्त कर दो। मनको हृदयके भीतरी भागोंकी ओर ले जाओ, इससे अनन्त शान्तिका अनुभव होगा।

वीर्यरक्षणके लिये, मानसिक ब्रह्मचर्य-पालनके लिये एक ही अचूक ओषधि है—'अपने मनको सदा शुभ कार्योंमें व्यस्त रखिये।' नित्य नियमित रूपसे प्रार्थना, जप, कीर्तन, धार्मिक पुस्तकोंका स्वाध्याय, सत्संग, ध्यान, निष्काम सेवा, धार्मिक चर्चा आदिसे मनको पवित्र बनाइये। बिना मतलब बोलना तथा सोचना छोड़ दीजिये। असत् चिन्तन और कथनको अपना शत्रु समझिये, फिर क्रमशः आपकी आदतोंमें परिवर्तन होता चला जायगा। आपका चरित्र सुधरता जायगा। मनुष्यका चरित्र या चाल-चलन उसकी आदतोंका एक गट्ठर ही है, अन्य कुछ नहीं। अपने दैनिक कार्योंका निरीक्षण कीजिये, आदतें सुधारिये। फिर आपकी शक्ति अपने-आप संचित होती जायगी। आप शक्ति-पुंज बन जायँगे। आप प्रभुके निकटतर पहुँचते जायँगे और मानवजीवन सफल होगा।

गोमूत्रसे कैंसरका उपचार

(१)

गोमूत्रसे कैंसरके निदानका सफल प्रयोग

गौ माताकी सेवा, गौ माताके दर्शन तथा गोदुग्ध एवं गोदधिके प्रयोगसे मानव पूर्ण नीरोग तथा सुखी-समृद्ध रह सकता है। यह मैं अपने जीवनके साठ वर्षोंकी अनुभूतियोंके आधारपर कह सकता हूँ।

हमारे गाँव सदलपुरमें मेरे पिताजी श्रीगोपीरामजी गोशालामें गायोंकी सेवा किया करते थे। स्वाधीनता सेनानी तथा परम गोभक्त लाला हरदेवसहायजी प्रत्येक वर्ष गोशालाके गोपाष्टमी-समारोहमें हमारे गाँव पधारते तथा हमारे परिवारमें ही उनका निवास हुआ करता। वे बातचीतके दौरान कहा करते थे कि 'गौ माताकी सेवासे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—चारोंकी प्राप्ति होती है।' उन्हींकी प्रेरणासे मैंने गोसेवाका संकल्प लिया। गाँवसे हमारा परिवार हिसार गया तो वहाँ भी गोसेवाका क्रम निरन्तर जारी रहा।

हमारा परिवार गायके ही दूध, दही, घीका प्रयोग करता है। मैं अब सत्तर वर्षका हो गया हूँ। गोमाताकी सेवा तथा गायके दूध-घीके उपयोगके कारण मैं आजतक बीमार नहीं हुआ और न किसी भी प्रकारकी औषधिके सेवनकी आवश्यकता ही हुई।

हमने २० एकड़का खेत गोट लिया है, उसकी फसलके लिये हम गोबर तथा गोमूत्रसे बनी खादका प्रयोग करते हैं। फसल इतनी अच्छी होती है कि आस-पासके किसान भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

कैंसरका सफल उपचार—मैंने गायके दही, मूत्र तथा तुलसीपत्रोंके योगसे असाध्य कहे जानेवाले रोग 'कैंसर' की औषधि तैयार की है—जिससे कैंसरके अनेक रोगियोंको रोगमुक्त करनेमें सफलता मिली है। वह योग निम्न प्रकारसे तैयार किया जा सकता है—

भारतीय नस्लकी गायके दूधका एक पावसे आधा किलो दही, चार चम्मच गोमूत्र, पाँचसे दस पत्ते तुलसीपत्र, कुछ शुद्ध मधु—इन चारों पदार्थोंको एक पात्रमें मिलाकर, मथकर प्रातःकाल खाली पेट प्रतिदिन केवल एक बार पीनेसे तथा एक वर्षतकके इस प्रयोगसे प्रारम्भिक अवस्थाका कैंसर पूरी तरह दूर हो जाता है।

गौ माताके शरीरपर हाथ फेरनेसे, उसके श्वाससे अनेक प्रकारके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। गोबरके कण्डोंकी राखसे दुर्गन्ध देखते-ही-देखते काफूर हो जाती है।

कब्ज, खाँसी, दमा, जुकाम, जीर्ण ज्वर, उदररोग तथा चर्मरोग आदिमें गोमूत्र रामबाण दवाका काम करता है।

अमेरिकामें स्थित जर्सी-पशु-अनुसन्धान-केन्द्रके वैज्ञानिकोंने गोदुग्ध तथा गोमूत्रकी वैज्ञानिक जाँचके बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि गोदुग्ध तथा गोमूत्रमें अनेक रोगोंके विषाणुओंका उन्मूलन करनेकी क्षमता है। गोमूत्रमें कार्बोलिक एसिड भी होता है, जो कीटाणुनाशक है। इसमें हृदय और मस्तिष्कके विकारोंको भी दूर करनेकी अद्भुत क्षमता है।

गोमूत्रमें हरड़ (हर्रे) भिगोकर धीमी आँचपर गरम करे। जलीय भाग जल जानेपर उस हरड़का चूर्ण बना ले। यह चूर्ण अनेक रोगोंकी रामबाण दवा है।

—श्रीनन्दकिशोरजी गोइनका

(२)

गोमूत्र-सेवनसे कैंसरका इलाज

मेरी ताई माँको गलेकी भोजन-नलीमें गाँठ होनेसे भोजन करना मुश्किल हो गया था। मैंने बाँसवाड़ा जाकर दवा करवायी। एक माहतक इलाज चला, पर कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। तब गुजरातमें मोड़ासा जाकर प्राइवेट अस्पतालमें दिखाया, वहाँ गलेमें गाँठ होना बताया गया और ऑपरेशन करवानेको कहा। ऑपरेशन करवाया और १५ दिन बादतक कोई लाभ न होनेपर पुन: वापस जाकर ऑपरेशन करवाया—दो गाँठें निकलीं। डॉ० साहबने गाँठोंको जाँचके लिये लैबोरेटरीमें भेजा। वहाँसे प्राप्त रिपोर्टमें भोजन-नलीमें कैंसर होना बताया गया। ऐसी दु:खद घटना सुनकर तो पूरे परिवारवाले हताश और परेशान हो गये। मेरे दादाजी देवी माँका स्मरण कर अहमदाबाद इलाजके लिये गये, वहाँ भी डॉ० साहबने कैंसर होना बताया तथा २१ दिनकी दवा दी। हम वापस घर चले आये। ताई माँके स्वास्थ्यमें कोई सुधार न हो सका था। हमलोग हताश-से हो गये थे कि अब क्या करें, कौन-सा उपाय करें? सभी भगवान्‌को याद करने लगे कि कोई उपाय पता चले, जिससे इस बीमारीसे छुटकारा मिले। ऐसे ही एक दिन स्वाध्याय करते समय 'कल्याण' में 'गोमूत्रसे जटिल रोगोंका इलाज' लेख पढ़कर मेरे दादाजी उसी दिनसे दोनों समय गोमूत्र लाकर मेरी ताई माँको सेवन करवाने लगे। २१ दिन बाद पुन: अहमदाबाद जाकर जाँच करवायी। डॉक्टरने कहा २१ दिनकी दवा और ले लो, उसके बाद सिविलमें भर्ती होना पड़ेगा। घर आकर नियमित गोमूत्रका सेवन कराया गया तथा प्रभुका स्मरण चलता रहा। २१ दिन बाद पुन: अहमदाबाद जाकर जाँच करवायी और डॉक्टरके कहनेपर ब्लडकी भी जाँच करवायी। रिपोर्ट देखकर डॉक्टर आश्चर्यमें पड़ गये कि इतनी जटिल बीमारी सिर्फ ४२ दिनकी दवा लेनेपर कैसे जड़से नष्ट हो गयी? मेरी ताई माँ पहलेकी तरह सामान्य भोजन भी करने लगीं। यह सुनकर वे आश्चर्य करने लगे। उन्होंने आश्वासन दिया कि रिपोर्ट सही है। बीमारी अब नहीं रही। जब उन्हें बताया गया कि ताई माँको नियमित रूपसे गोमूत्रका सेवन कराया गया है तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वास्तवमें गोमूत्रमें ऐसी शक्ति है कि श्रद्धा-विश्वासके साथ इसका विधिपूर्वक सेवन करनेसे बड़ी-से-बड़ी बीमारी सहज ही दूर हो जाती है और मन-बुद्धिमें निर्मलता भी आती है। यह ध्यान रखना चाहिये कि मूत्र शुद्ध भारतीय नस्लकी गायका ही हो।**—श्रीजितेन्द्र जोशी**

दीन गायें कह रही

दाँतों तले तृण दाबकर हैं दीन गायें कह रही—
'हम पशु तथा तुम हो मनुज, पर योग्य क्या तुमको यही?
हमने तुम्हें माँकी तरह है दूध पीनेको दिया,
देकर कसाईको हमें तुमने हमारा वध किया।'
'क्या वश हमारा है भला, हम दीन हैं बलहीन हैं,
मारो कि पालो कुछ करो तुम हम सदैव अधीन हैं।
प्रभुको यहाँसे भी कदाचित् आज हम असहाय हैं,
इससे अधिक अब क्या कहें—हा! हम तुम्हारी गाय हैं।'
'जारी रहा क्रम यदि यहाँ यों ही हमारे नाशका,
तो अस्त समझो सूर्य भारत-भाग्यके आकाशका।
जो तनिक हरियाली रही, वह भी न रहने पायगी,
यह स्वर्ण-भारतभूमि बस, मरघट-मही बन जायगी।'

—कविवर श्रीमैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारतीसे)

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३।५६ बजेतक	बुध	उ० षा० सायं ५।१ बजेतक	२० जुलाई	**पुष्य नक्षत्रका सूर्य** दिनमें ९। २३ बजे।
द्वितीया ,, ३। ३ बजेतक	गुरु	श्रवण ,, ५।६ बजेतक	२१ ,,	**कुंभराशि** रात्रिशेष ४। ५५ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिशेष ४। ५५ बजे।
तृतीया ,, १। ४८ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा दिनमें ४।४५ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें २। २६ बजेसे रात्रिमें १। ४८ बजेतक, **सायन सिंहराशिका सूर्य** रात्रिमें २। ५६ बजे।
चतुर्थी ,, १२। ८ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, ४। ० बजेतक	२३ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। १८ बजे।
पंचमी ,, १०।९ बजेतक	रवि	पू० भा० दिनमें २।५६ बजेतक	२४ ,,	**मीनराशि** दिनमें ९। १२ बजेसे।
षष्ठी ,, ७।५५ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, १।३४ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। ५५ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत, मूल** दिनमें १। ३४ बजेसे।
सप्तमी सायं ५।३३ बजेतक	मंगल	रेवती ,, १२। २ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** प्रातः ६। ४५ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें १२। २ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें १२। २ बजे।
अष्टमी दिनमें ३।५ बजेतक	बुध	अश्विनी ,, १०। २४ बजेतक	२७ ,,	**बुधाष्टमी, मूल** दिनमें १०। २४ बजेतक।
नवमी ,, १२। ३६ बजेतक	गुरु	भरणी ,, ८।४३ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। २४ बजेसे, **वृषराशि** दिनमें २। १८ बजेसे।
दशमी ,, १०।१३ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ,, ७।७ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। १३ बजेतक।
एकादशी ,, ७।५९ बजेतक	शनि	रोहिणी प्रातः ५।४० बजेतक	३० ,,	**मिथुनराशि** सायं ५। २ बजेसे, **कामदा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी प्रातः ५।५६ बजेतक	रवि	आर्द्रा रात्रिमें ३। २८ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ४। १४ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें २।५३ बजेतक	सोम	पुनर्वसु रात्रिमें २।५३ बजेतक	१ अगस्त	**भद्रा** दिनमें ३। ३४ बजेतक, **कर्कराशि** रात्रिमें ९। २ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
अमावस्या ,, १। ५७ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, २। ४१ बजेतक	२ ,,	**भौमवती अमावस्या, मूल** रात्रिमें २। ४१ बजेसे।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १।३१ बजेतक	बुध	आश्लेषा रात्रिमें ३। ० बजेतक	३ अगस्त	**सिंहराशि** रात्रिमें ३। ० बजेसे, आश्लेषाका सूर्य दिनमें ९। ४४ बजे।
द्वितीया ,, १। ३४ बजेतक	गुरु	मघा ,, ३। ४७ बजेतक	४ ,,	**चन्द्रदर्शन, मूल** रात्रिमें ३। ४७ बजेतक।
तृतीया ,, २। ११ बजेतक	शुक्र	पू० फा० रात्रिशेष ५।७ बजेतक	५ ,,	**स्वर्णगौरीव्रत।**
चतुर्थी ,, ३। १३ बजेतक	शनि	उ० फा० अहोरात्र	६ ,,	**भद्रा** २। ४२ बजेसे रात्रिमें ३। १३ बजेतक, कन्याराशि दिनमें ११। ३३ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी रात्रिशेष ४।४३ बजेतक	रवि	उ० फा० प्रातः ६।५३ बजेतक	७ ,,	**नागपंचमी।**
षष्ठी अहोरात्र	सोम	हस्त दिनमें ९। २ बजेतक	८ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १०। १६ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
षष्ठी प्रातः ६। ३३ बजेतक	मंगल	चित्रा ,, ११। ३० बजेतक	९ ,,	**भौमव्रत।**
सप्तमी दिनमें ८।३४ बजेतक	बुध	स्वाती ,, २। ७ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ८।३४ बजेसे रात्रिमें ९।३५ बजेतक, **गोस्वामी श्रीतुलसीदासजयन्ती।**
अष्टमी ,, १०। ३६ बजेतक	गुरु	विशाखा ,, ४। ४२ बजेतक	११ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें १०। ३ बजेसे।
नवमी ,, १२। २९ बजेतक	शुक्र	अनुराधा रात्रिमें ७। ६ बजेतक	१२ ,,	**मूल** रात्रिमें ७। ६ बजेसे।
दशमी ,, २। ४ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, ९। १२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। ३८ बजेसे, **धनुराशि** रात्रिमें ९। १२ बजेसे।
एकादशी ,, ३। १४ बजेतक	रवि	मूल ,, १०।५३ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। १४ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), मूल** रात्रिमें १०। ५३ बजेतक।
द्वादशी ,, ३।५९ बजेतक	सोम	पू० षा० ,, १२। ६ बजेतक	१५ ,,	**श्रावण सोमवारव्रत, सोमप्रदोषव्रत, स्वतंत्रतादिवस।**
त्रयोदशी ,, ४। ९ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,, १२। ४८ बजेतक	१६ ,,	**मकरराशि** प्रातः ६। १७ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ३। ५० बजेतक	बुध	श्रवण ,, १। १ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिन ३। ५० से रात्रि ३। २६ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा, सिंहसंक्रान्ति दिनमें ८। ३१ बजे।**
पूर्णिमा ,, ३। २ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, १२। ४५ बजेतक	१८ ,,	**कुंभराशि** दिनमें १२। ५४ बजेसे, **पूर्णिमा, रक्षाबन्धन, यज्ञोपवीतपूजन, पंचकारम्भ** दिनमें १२। ५४ बजे।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

तीन श्रेष्ठ भाव

आपका कृपापत्र मिला। आपने पूछा कि 'जगत्‌के सब जीवोंमें सच्चा प्रेम कैसे हो, सब एक-दूसरेकी भलाईमें कैसे प्रवृत्त हों और कोई भी किसीकी कभी बुराई न करे, इसका क्या उपाय है?' सो मेरी समझमें निम्नलिखित तीन भावोंके अनुसार व्यवहार करनेपर ऐसा होना सम्भव है।

(१) जगत्‌के सभी जीव श्रीभगवान्‌से उत्पन्न हैं, उनकी संतान हैं, और इसलिये सब भाई-भाई हैं।

(२) जगत्‌के सभी जीवोंमें एक ही आत्मा है।

(३) जगत्‌के समस्त जीवोंके रूपमें एकमात्र श्रीभगवान् ही प्रकट हैं।

ये तीनों ही शास्त्र-सम्मत और सत्पुरुषोंके द्वारा अनुभूत सत्-भाव हैं एवं इनमें प्रत्येक उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। अब इन तीनोंपर कुछ अलग-अलग विचार कीजिये—

(१) जगत्‌के सभी जीव भगवान्‌से ही पैदा हुए हैं, भगवान्‌की ही सत्तासे भगवान्‌में ही जी रहे हैं और अन्तमें भगवान्‌में ही सबका प्रवेश होता है।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।' (तै० उ०)

भगवान् ही सबके माता, पिता, पितामह हैं। अतएव सब भाई-भाई हैं। भाईका भाईमें प्रेम होना ही चाहिये तथा भाई भाईका भला करता ही है और भाई वस्तुतः भाईका बुरा कर नहीं सकता। इस भावका यथार्थ विकास होनेपर परस्पर प्रेम और हितकी चेष्टा होना अनिवार्य है। सच्चे भ्रातृ-भावमें त्याग अपने-आप ही खिल उठता है। भाईका सुख-स्वार्थ ही अपना सुख-स्वार्थ बन जाता है और उसीमें परस्पर परितृप्ति होती है। श्रीरामजी भाई भरतको सिंहासनासीन बनाना चाहते हैं और भरतजी भगवान् रामकी सेवा करनेके सिवा और कुछ स्वीकार ही नहीं करते। भरतकी राज्य-प्राप्तिके लिये वन जाते समय रामजी अपना अहोभाग्य मानते हैं—

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सन मुख आजू॥

और भरतजी वनमें जाकर रामजीसे कहते हैं—

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥

विश्वका दुर्भाग्य है कि आज यह पवित्र भाव लुप्तप्राय हो गया है। आज भाईका स्थान वैरीका-सा हो चला है। भाई ही सबसे बढ़कर भाईकी बुराई करनेपर तुला है। यह भारी प्रमाद है। इस प्रमादसे बचनेके लिये यूरोपके मनीषियोंने 'विश्वभ्रातृत्व' का प्रचार करना चाहा। यद्यपि उसमें एक बड़ा दोष था, वह केवल मानव-मानवमें ही भ्रातृत्वकी स्थापना करना चाहता था, भूतमात्रमें नहीं तथापि वह भी चला नहीं। नीच व्यक्तिगत स्वार्थने भ्रातृत्वके पवित्र भावकी जड़ नहीं जमने दी। स्वार्थवश भाई ही भाईका गला काटनेको तैयार हो गया। इसीसे आज जगत्‌में हाहाकार मचा है। आज ऐसा राम-सा भाई कहाँ है, जो भाईके गुण गाते-गाते अघाता न हो।

भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उँजिआरी॥

(२) भगवान्‌ने (गीता ६। २९)-में कहा है—'सर्वत्र आत्माको समभावसे देखनेवाला युक्तात्मा देखता है कि समस्त प्राणियोंमें आत्मा है और समस्त प्राणी आत्मामें हैं।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

अपने-आपमें सबका स्वाभाविक प्रेम है, सभी स्वाभाविक अपनी भलाई चाहते और करते हैं तथा जान-बूझकर अपना बुरा कोई नहीं करता। वरं सब चौकन्ने रहते हैं कि कहीं हमारा कोई अनिष्ट न हो जाय। अतएव जब यह भाव हो जायगा कि सब मेरे आत्मा ही हैं, सब मैं-ही-मैं हूँ, तब अपने-आप ही उपर्युक्त बातें बन जायँगी। हमारे शरीरके किसी अंगमें कहीं भी काँटा चुभ जाय, कहीं कुछ पीड़ा हो जाय तो उसका अनुभव हमें समानरूपसे होता है। हमारे शरीर और नामको किसी अंशमें कहीं कोई सुख-सम्मान मिलता है तो हम प्रसन्न होते हैं। कभी ऐसा नहीं सोचते कि अमुक अंगमें सुख है तो दूसरेमें नहीं होना चाहिये या अमुक अंगमें दुःख है तो दूसरेमें भी होना चाहिये। हम चाहते हैं हमारे किसी अंगमें कभी कोई दुःख या पीड़ा न हो, सबमें सदा सुख रहे। सर्वत्र आत्मभाव हो जानेपर सबके सुख-दुःखमें ऐसी ही समदृष्टि हो जाती है। फिर, प्राणीमात्रका दुःख हमारा दुःख और सुख हमारा

सुख हो जाता है। हमारी सीमाबद्ध अहन्ता विश्वचराचरमें विस्तृत हो जाती है, हमारी क्षुद्र आत्मसत्ता विश्वकी विराट् सत्तामें मिल जाती है और हमारा क्षुद्र स्वार्थ विश्वके विस्तृत स्वार्थमें घुल-मिलकर एक हो जाता है। इसी अवस्थाको प्राप्त पुरुषके लिये भगवान्‌ने गीता (६। ३२)-में कहा है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

'जो अपने आत्माके समान ही सबके सुख-दुःखको समानरूपसे देखता है; अर्जुन! वही श्रेष्ठ योगी माना गया है।'

यह भाव प्रथम भावकी अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ है। भाई-भाईमें स्वार्थवश वैर-विरोध हो सकता है, परंतु अपने आत्मासे किसीका वैर-विरोध नहीं होता तथापि मनुष्य जैसे क्रोध या मोहके आवेशमें आप ही अपनी हानि कर बैठता है, आत्महत्यातक कर डालता है, वैसे ही मोहवश आत्मभूत जगत्‌का भी अनिष्ट करनेपर उतारू हो जाता है। आज यही हो रहा है।

(३) एकमात्र हमारे परमाराध्य इष्टदेव भगवान् ही विश्व और विश्वके प्रत्येक प्राणीके रूपमें प्रकट हैं। उनके सिवा और कुछ है ही नहीं। सर्वत्र वे-ही-वे हैं। उन्होंने कहा है, 'अर्जुन! मेरे सिवा और कुछ है ही नहीं।'

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

अतः जो मुझको सर्वत्र देखता है और सबको मुझमें देखता है, उसकी आँखोंसे मैं कभी ओझल नहीं होता एवं वह मेरी आँखोंके सामनेसे कभी नहीं हटता।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

इस परम भावकी प्राप्ति होनेपर उसे सर्वत्र पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, ग्रह, नक्षत्र, वृक्ष, लता, दिशाएँ, नदी, समुद्र—सभीमें अपने भगवान्‌के दर्शन होते हैं। ***'जित देखों तित श्याममयी है।'*** फिर वह सबका सम्मान, सबका हित, सभीकी पूजा, सभीका सत्कार स्वभावसे ही करता है। उसका मस्तक और हृदय सबके सामने सदा झुका रहता है—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

इनमेंसे किसी भी भावका यथार्थ प्रकाश मनुष्यके क्षुद्र स्वार्थका नाश कर सकता है। स्वार्थ और अभिमानसे ही वैर-विरोध, अनिष्ट-चिन्तन और असद्-व्यवहार होता है। स्वार्थ और अभिमानका जितने अंशमें त्याग होता है, उतने ही अंशमें इन दोषोंका नाश होता है तथा प्रेम और हित-चिन्तनकी वृद्धि होती है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

मनके जीते जीत है, मनके हारे हार

आदरणीया बहनजी, सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपने अपने पुत्रके सम्बन्धमें कुछ बातें लिखीं। आपने लिखा कि वह पढ़ाईमें बहुत तेज था, पर बीमारीके कारण आगेकी परीक्षाओंमें उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। वर्तमानमें वह निराशा और अवसादसे ग्रस्त है, यहाँतक कि आत्म-हत्याकी बात करता है अथवा साधु बननेकी बात करता है। वस्तुतः ये सारी बातें अज्ञानताके कारण होती हैं।

बालकको जीवनसे कभी निराश नहीं होना चाहिये। वर्तमानमें जो परिस्थितियाँ सामने रहती हैं, उसके अनुसार शान्तभावसे विवेकपूर्वक निर्णय लेना चाहिये। व्यर्थ बैठनेसे कई प्रकारके असंगत विचार मनमें उठते हैं तथा कभी-कभी निराशा और मानसिक तनाव भी होने लगता है, जो व्यक्तिके दुःखका कारण बनता है, अतः किसी कार्यमें संलग्न होनेका प्रयास करना चाहिये—व्यवसाय, नौकरी अथवा अर्थोपार्जनके किसी भी साधनमें अपनी रुचिके अनुसार लगनेका प्रयास करना चाहिये। इसके साथ ही अध्ययन तथा अच्छी पुस्तकोंका स्वाध्याय करना चाहिये। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकोंका नाम यहाँ दिया जा रहा है—स्वर्णपथ, अमृतके घूँट, जीवनमें नया प्रकाश, आशाकी नयी किरणें, महकते जीवनके फूल, आनन्दमय जीवन, प्रेम-सत्संग-सुधा-माला, शरणागति इत्यादि। इन पुस्तकोंको विशेषरूपसे जितना हो सके, पढ़नेका प्रयास करें, इससे उनके मनमें उत्साहका संचार हो सकेगा और दिशा भी मिलेगी।

पुरुषार्थ करना मनुष्यका कर्तव्य है। पुरुषार्थसे ही मनुष्यका भाग्य भी बनता है। जो कुछ हो रहा है, वह सब परमात्माका विधान है। उनका विधान सबके लिये मंगलमय होता है। अतः कभी भी निराश नहीं होना चाहिये।

यदि कोई मार्ग न सूझता हो तो एकान्तमें भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये। परमात्मप्रभु परमदयालु एवं करुणावरुणालय हैं, वे आपकी बात अवश्य सुनेंगे और कोई-न-कोई दिशा-निर्देश भी करेंगे। शेष प्रभुकृपा।

कृपानुभूति

न जाने किस रूपमें नारायण मिल जायँ

घटना सितम्बर सन् २००४ ई० की है। घरके सब प्राणी सुबह अपने-अपने कामपर चले गये। मैं घरपर अकेला ही रह गया। यह प्रतिदिनकी दिनचर्या है। घरका काम करनेवाली ओमवती आयी और अपना काम निपटाकर चली गयी। अब उसे शामको ही आना था। मैं अन्दरसे कुण्डी लगाकर बैठ गया। दोपहरके २ बजे अचानक मुझे पैरालिसिसका अटैक हो गया। शरीरके सभी अंग जवाब दे गये। मुझे लगा कि मेरा अन्त समय आ गया है। मैंने सच्चे दिलसे प्रभुको पुकारा। 'हे मेरे नाथ! मुझे केवल इतनी शक्ति दे दो कि मैं दरवाजेकी कुण्डी खोल सकूँ ताकि शामको जब बच्चे आयें तो उनको दरवाजा तोड़नेका कष्ट न उठाना पड़े। मौतका डर तो नहीं था, पर मेरे कारण किसीको कष्ट न हो। इसी कारण प्रभुको पुकारा। चमत्कार! उसी समय प्रभुने मेरी पुकार सुन ली और इतनी शक्ति दे दी कि मैं पलंगसे नीचे उतरकर घिसटता-घिसटता दरवाजेतक पहुँच गया। कुण्डी खोलनेके लिये हाथ ऊपर उठाया और कुण्डी खुल गयी। कुण्डी खोलनेके पश्चात् ऐसा लगा कि मैं ठीक हो गया हूँ। मैं खड़ा हो गया और चलकर वापस पलंगपर आकर बैठ गया। उसी समय हमारी काम करनेवाली ओमवतीने दरवाजा खटखटाया। मैंने आवाज दी—'आ जाओ, दरवाजा खुला है।' मैंने पूछा, 'इस समय किसलिये आयी हो?' वह कहने लगी कि मैं कालोनीके गेटसे वापस आयी हूँ। सोचा सब्जी लेती जाऊँ। मैंने उसे कहा, 'आओ, मेरे पास बैठो। मैं उसे अपने साथ हुई घटना बताने लगा। मैंने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि अचानक फिर अटैक हो गया। वह मेरी हालत देखकर घबरा गयी। कहने लगी बेटेको फोन कर दो। फोन मेरे पास ही पड़ा था। फोनपर बेटेको इतना ही बोल पाया ...आ..... और मेरी आवाज बन्द हो गयी। मेरा पूरा शरीर सुन्न हो गया। केवल दिमाग और आँखें काम कर रही थीं। शरीरके बाकी तमाम अंगोंने काम करना बन्द कर दिया। मैं मृतप्राय हो गया। ओमवतीने मेरी यह हालत देखकर बाहर जाकर शोर मचा दिया कि डैडीको (मुझे) कुछ हो गया है। आसपासके सब लोग इकट्ठे हो गये। मैं ए०जी०-१६ में रहता हूँ। ए०जी०-१७ में रहनेवाली यामनीके पास कार थी और उसे चलानी भी आती थी। उसने कार मेरे दरवाजेके सामने खड़ी करके चौकीदारोंको आवाज देकर बुलाया। इतनेमें और लोग भी आ गये। दो लोगोंने मेरे सिरको उठाया, दो लोगोंने मेरे धड़को और दो लोगोंने मेरी टाँगें उठायीं और मुझे कारमें डालकर बालाजी हॉस्पिटल ले चले। यह हॉस्पिटल हमारी कालोनीके पिछले गेटके सामने ही है। तुरंत वहाँ इमरजेन्सीमें ले गये।

प्रभुकी लीला अपरम्पार है। मैं इस कालोनीमें १९८८ से रह रहा हूँ। सब लोग बहुत प्यार करते हैं। ए०एस०-१८ में रहनेवाली नीलमने अपने देवर बलरामको फोन कर दिया कि हम डैडीको लेकर हॉस्पिटल जा रहे हैं, तुम वहाँ पहुँचो। हॉस्पिटल पहुँचे तो बलराम पहले ही स्ट्रैचर लेकर खड़ा था। जाते ही इलाज आरम्भ हो गया। डॉक्टरने कहा इन्हें एडमिट करना है दस हजार रुपये जमा करवाओ। उसने देखा उसकी जेबमें एक हजार रुपये थे। उसने एक हजार जमा करवाकर कहा आप इलाज जारी रखो, बाकी घरसे लाकर जमा करवा दूँगा।

उधर मेरे बेटे सुनीलको फोन मिलते ही आभास हो गया कि पिताजीकी हालत ठीक नहीं है। उसने अपने मित्रोंको फोन कर दिया। वे पास ही मुलताननगरमें रहते हैं। वे सभी उसी समय हॉस्पिटल पहुँच गये और आते ही उन्होंने बाकी नौ हजार रुपये जमा कर दिये। अभीतक मेरे घरका कोई प्राणी भी नहीं पहुँचा था। सब काम उनके आनेसे पहले ही हो गया। कुछ समय बाद मेरा बेटा, बहू, पोता, पोती सब आ गये। इलाज आरम्भ हो गया और कुछ दिनोंमें मैं ठीक हो गया।

मेरा यह मानना है कि भगवान्ने खुद आकर मुझे बचाया। भगवान् ओमवतीके रूपमें आये। वह न आती तो घरवाले तो सायंकाल ६ बजेतक ही आते, उस समयतक मेरी क्या हालत होती। डॉक्टरका कहना था कि २-३ घण्टे और न लाते तो इनका एक अंग हमेशाके लिये नकारा हो जाता। भगवान्ने ही ओमवती, यामनी, नीलम और बलरामके रूपमें आकर मेरी जान बचानेकी व्यवस्था कर दी। मेरा निश्चय और पक्का कर दिया कि भगवान्को कोई सच्चे दिलसे पुकारे तो भगवान् अवश्य आते हैं।—**विष्णु भगवान शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

भूखे याचकको दुतकारनेका फल

घटना सम्भवत: सन् २००० ई० की है, जो कि मेरे एक मित्र मिल मालिक सरदारजीने सुनायी थी।

एक बार ये सरदारजी हरिद्वार गये थे; वहाँ हरकी पौड़ीपर स्नान-ध्यान करनेके पश्चात् ये एक पूरीवालेके यहाँसे पूरी लेकर खानेको ज्यों ही तैयार हुए कि एक भीख माँगनेवाला आ गया, बोला—बाबू! हमें भी पूरी दिला दो। मेरे मित्रने उसे धमकाकर भगा दिया; मगर वह पुन: आ गया, बोला—बाबू! कलसे कुछ खाया नहीं है। इस बार भी उन्होंने झिड़ककर भगा दिया और स्वयं पूरी खाकर ट्रेनसे अपने शहर मण्डी गोविन्दगढ़ (पंजाब) आ गये।

शामको वे मेरे मित्र महोदय जब भोजन करने बैठे तो वही भिखारी आँखोंके सामने तैरने लगा, मानो वह कह रहा है कि बाबू! मुझे कुछ पूरी दिला दो, कलसे भूखा हूँ। मगर वे जैसे-तैसे खाना खाकर सो गये। अगले दिन दोपहर जब वे भोजन करने बैठे, पहला ही कौर मुँहमें डाला था कि वही दृश्य पुन: सामने आ गया, 'बाबू! कलसे कुछ खाया नहीं है' इस प्रकार जब भी वे खानेपर बैठते, बार-बार वही दृश्य सामने आता। वे घबरा गये और तीन दिन पश्चात् जब वह सीन दुबारा आया तो वे खानेकी थाली छोड़कर तुरंत ही हरिद्वारके लिये कारद्वारा रवाना हो गये।

हरकी पौड़ीपर पहुँचकर वे २०-२५ भिखारियोंको बुलाकर लाये और उसी पूरीवालेसे सबको भरपेट पूरी सब्जी एवं हलुआ खिलाया। जब सब तृप्त हो गये तो वे अपने शहर वापस आ गये।

इसके बाद उन्हें कभी वह दृश्य उपस्थित नहीं हुआ। उन्होंने नियम ले लिया कि मैं जब भी हरिद्वार या अन्य तीर्थपर जाऊँगा तो यदि कोई भी भूखा मिलेगा तो पहले उसे खिलाकर फिर स्वयं खाऊँगा।—**ओमप्रकाश डाटा**

(२)

गीतापाठसे गऊमाताकी देहमुक्ति

ईश्वरकी परम कृपा और पूज्य पिताजीद्वारा प्राप्त संस्कारोंसे हम अपने व्ययसे दो गोसेवालय संचालित कर रहे हैं। एक गोसेवालय दिव्य चिकित्सा भवन, पनगरा (बाँदा) परिसरमें तथा एक आयुष ग्राम ट्रस्ट परिसर चित्रकूटधाममें संचालित हो रहा है। यद्यपि अभी दोनों जगहोंमें कुल ४० गऊमाताएँ हैं, पर धीरे-धीरे ५०० गायें रखनेका संकल्प है। दिव्य चिकित्सा भवनमें चल रहे गोसेवालयकी एक गाय एक दिन चरते समय नहरमें गिर पड़ी, जिससे उसके पीछेकी दोनों टाँगें टूट गयीं। इस घटनाके बादसे उन गऊमाताका चलना-फिरना और उठना बिलकुल बन्द हो गया। गऊमाता गर्भिणी भी थीं। यद्यपि हमने उनकी पर्याप्त चिकित्सा करायी, पर वे उठ नहीं पायीं। इस प्रकार उन गोमाताको बैठे-बैठे १५ दिन बीत गये।

दिव्य चिकित्सा भवन पनगरा (बाँदा) परिसरमें उत्तर प्रदेश सरकारके आयुर्वेदिक बोर्डद्वारा मान्यताप्राप्त एक नर्सिंग कॉलेज भी है। इस कॉलेजका मैं प्रिन्सिपल भी हूँ।

४ दिसम्बर २०१५ ई० शुक्रवारका दिन, अपराह्ण १ बजे; मैं नर्सिंग कॉलेजसे व्याख्यान देकर परिसरमें आया तो देखा कि वे अपंग गऊमाता बहुत दुखी और असहाय-सी बैठी हैं, पर उनके ऐसे लक्षण नहीं थे कि उनका शरीर शीघ्र छूट जायगा। मैं उनके पास गया और उनके सिरको थोड़ा सहलाया फिर दिव्य चिकित्सा भवनमें पदस्थ वैद्य एम० पी० तिवारीजीको बुलाया और कहा कि वैद्यजी! ये गौमाता बहुत ही दुखी हैं, इन्हें इस देहसे मुक्ति मिलनी चाहिये। मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि ये तबतक शरीर नहीं छोड़ेंगी जबतक कि ये गीता-श्रवण नहीं कर लेंगी। आप इन्हें श्रीमद्भगवद्गीता सुना दें और इनके मुँहमें गंगाजल और तुलसीदल डालकर मुक्त होनेके लिये कह दें।

वैद्यजीने तुरंत गीता लेकर पूराका पूरा १८ अध्याय

गौमाताको सुनाया और तुलसीदल, गंगाजल मुँहमें डाला। ४ बजे गीताका पाठ पूरा हुआ। बस! ४ घण्टे बाद ठीक रात्रि ८ बजे भोजनके बाद परिसरमें निकला तो वे गऊमाता अचानक लेट गयीं और उनकी ऊर्ध्वश्वास चलने लगी, फिर ठीक १० बजे उन्होंने प्राण छोड़ दिये। इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताका प्रत्यक्ष चमत्कार सभीने देखा।

हम भूलोकवासियोंको ऐसी ईश्वरीय वाणी धरोहरके रूपमें प्राप्त है, जिससे मानव क्या सम्पूर्ण चराचर जगत् सद्गतिको प्राप्त कर सकता है। पर देशका दुर्भाग्य है कि बढ़ते भौतिकवादमें हम ऐसे वाङ्मयका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं और दुर्गतिको भोग रहे हैं।—**डॉ० मदनगोपाल वाजपेयी**

(३)

ईमानदारी आज भी शेष है

यद्यपि कलियुगके प्रभावसे आजके युगमें छल-कपट, प्रपंच, बेईमानी, मिथ्यावादिता, अराजकता एवं भ्रष्टाचारका बोलबाला है तथापि आज भी संसारमें अनेक ईमानदार व्यक्ति हैं।

घटना २९ जुलाई सन् १९१५ ई० की है। बिहार प्रान्तके अन्तर्गत मधुबनी जिलेके पंजाब नेशनल बैंक, शाखा बाबूबरहीमें नगद पचीस हजार जमा करनेके लिये मैंने पर्ची भरकर रुपयाके साथ भेजा। रुपया जमाके बाद मुझे प्राप्त रसीद वापस मिल गयी।

उसी दिन शामको बैंकके प्रधान खजांची मेरे एक परिचित बैंककर्मीके साथ मेरे आवासपर आये और पूछताछ करनेके बाद पन्द्रह हजार रुपया वापस करते हुए कहा कि इतना रुपया अधिक था।

खोजनेपर पता चला कि पचीस हजारके स्थानपर धोखेसे चालीस हजारका चेक बैंक चला गया था।

बैंकके खजांची श्रीसिंहने यह सिद्ध कर दिया कि ईमानदारी आज भी शेष है।—**गुणानन्द झा**

(४)

आयुर्वेदिक घरेलू नुस्खे

१. भोजन करके तुरंत सोना या परिश्रम करना, चिन्ता करते हुए भोजन करना, भोजन करते हुए बातें करना और भोजनके अन्तमें जल पीना अपच और कब्ज करनेवाले काम हैं।

२. पेटदर्द होनेपर तुलसीके पत्तेका रस आधा चम्मच, एक चौथाई अदरकका रस दोनोंको मिलाकर गुनगना करके पीनेसे आराम होगा।

३. छोटी हरडको बारीक पीसकर छालोंपर लगानेसे मुँह तथा जीभके छालोंसे छुटकारा मिलता है तथा मुखपाक मिटता है। दिनमें दो-तीन बार लगायें।

४. लहसुन एवं नींबूका रस मिलाकर रातको बालोंमें लगाकर प्रातः गरम पानीसे बाल धोनेसे जुएँ एवं लीखें मर जाती हैं।

५. बच्चोंके पेटमें कृमि होनेपर उन्हें नियमित रूपसे सुबह-शाम दो-दो चम्मच अनारका रस पिलानेसे कृमि नष्ट हो जाते हैं।

६. रात्रिको चार-पाँच खजूर पानीमें भिगो दें, सुबह शहदके साथ मिलाकर दस दिन लें, लीवर स्वस्थ होता है।

७. दो टमाटरोंमें नमक और कालीमिर्च लगाकर रोजाना सुबह पन्द्रह दिन खायें पेटके कीड़े मरकर बाहर निकल जायेंगे, इसे तीन सालसे कम उम्रके बच्चोंको न दें।

८. प्रातःकाल २ से ४ गिलास पानी ताँबेके पात्रमें रातको रखा हुआ, इसमें चाँदीका १ सिक्का डालकर बर्तनको लकड़ीपर रखें, पानी बैठकर ही पीयें, आरोग्य रहनेकी चमत्कारिक रीति है।

९. आँवला चूर्ण एक चम्मच, काला जीरा एक चम्मच तथा शक्कर दो चम्मच मिलाकर इस मिश्रणको प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल आधा चम्मच पानीसे देनेपर बच्चे कुछ ही दिनमें बिस्तरमें मूत्र त्यागना बन्द कर देते हैं। इस मिश्रणसे मूत्राशयकी धारणशक्तिमें वृद्धि होती है।

१०. मिश्रीको बारीक पीसकर उसमें थोड़ा-सा कपूर मिलाकर मुँहमें लगायें या भुरकायें (मिश्री ८ भाग, कपूर १ भाग) इससे मुँहके छाले और मुँहपाक मिटता है। यह दवा बच्चोंके मुँह आनेपर बहुत लाभकारी है।

११. १० ग्राम अजवाइनको एक साफ कपड़ेकी पोटलीमें बाँधकर तवेपर गर्म कर लें। इसे बार-बार सूँघनेसे जुकाममें आराम होता है, बन्द नाक खुल जाती

है, सिरका भारीपन मिट जाता है।

१२. महीन पिसे एवं कपड़छान किये हुए सेंधानमकमें ४ गुना सरसों तेल मिलाकर प्रातः उँगलीसे हलके-हलके दाँतों एवं मसूड़ोंपर मालिश करें एवं बादमें ठण्डे या गुनगुने पानीसे कुल्ले कर लें। इससे दाँतोंकी समस्त तकलीफोंमें आराम मिलता है।

१३. खून खराब होने तथा फोड़े-फुन्सियाँ होनेपर गाजरका रस आधा गिलास (१२५ ग्राम) प्रातः नाश्तेसे पहले और शामको चार बजे लगभग नित्य दो बार पीयें। २०-२५ दिन पीनेसे रक्तविकार नष्ट होकर रक्त साफ हो जाता है। फोड़े-फुन्सी निकलना बन्द हो जाते हैं।

१४. आधा नींबू लेकर उसपर चीनी, नमक और कालीमिर्च लगाकर चूसें, इससे हिचकीमें आराम होता है।

१५. नारियलकी गिरी और गुड़ समभाग मिलाकर पेट खाली रहनेपर भरपेट खानेसे कुछ देर बाद ही पेटके सारे कीड़े मर जाते हैं।

(५)

पूर्वजन्म तथा कर्मफल

यह घटना लगभग ५० वर्ष पूर्वकी है। उन दिनों यक्ष्माकी समुचित चिकित्सा नहीं थी। जिसे यह रोग हो जाता, वह कुछ ही दिनोंका मेहमान माना जाता था।

बंगाल, फरीदपुर जिलेके श्रीजितेन्द्रनाथ दास वर्मन नामक एक बंगीय युवकको यक्ष्मा हो गया था। कलकत्तेके बड़े-बड़े डॉक्टरोंसे इलाज कराया गया, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। रोग दिनों-दिन बढ़ता ही गया। अन्तमें उसने अपने कुलगुरुके आदेशके अनुसार श्रीतारकेश्वर बाबाके मन्दिरमें पूजा-उपासना प्रारम्भ कर दी। कुछ ही दिनोंके बाद तारकेश्वर बाबासे उसको स्वप्नमें यह आदेश मिला कि 'पूर्वजन्ममें अपने पिताके प्रति बड़ा भारी अपराध करनेके कारण तुम्हें यह रोग हुआ है। तुम यदि उनके चरणरजको ताबीजमें मढ़ाकर धारण कर सको और प्रतिदिन उनका चरणोदक ले सको एवं वे सन्तुष्ट होकर तुम्हें क्षमा कर दें तो तुम्हारा रोग नष्ट हो सकता है, इसके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है। तुम्हारे पूर्वजन्मके वे पिता इस समय फरीदपुरके बड़े डॉक्टर श्रीसत्यरंजन घोषके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे एक महापुरुषके शिष्य भी हैं।' युवकने पूरी घटना उक्त डॉक्टर महोदयको लिख दी और उनके घर जाकर रहनेकी अनुमति माँगी। डॉक्टर बाबू ऐसे यक्ष्माके रोगीको घरमें रखनेसे घबराये। साथ ही उनके मनमें यह भी आया कि यदि मेरे अस्वीकार करनेसे लड़का मर जायगा तो उसका निमित्त मुझे बनना पड़ेगा। वे कुछ भी निश्चय नहीं कर पाये, तब उन्होंने सारी घटना लिखकर अपने गुरुदेव श्रीस्वामी धनंजयदासजी व्रज-विदेहीसे सम्मति चाही। स्वामीजीने उनको लिखा—'इस प्रकारके संक्रामक रोगीको घरमें रखनेसे डरना स्वाभाविक ही है, परंतु वह अपने किसी परिचित या आत्मीयके घरपर ठहर सकता है अथवा शहरके बाहरकी ओर किसी खुली जगहमें कोई घर किरायेपर लेकर आप उसे टिका सकते हैं और प्रतिदिन टहलते हुए आप एक बार जाकर उसे चरणरज और चरणोदक दे सकते हैं। फिर जब आपके मनमें क्षमा करनेकी आये, तब क्षमा कर दें। इसमें भी असुविधा हो तो आप अपना एक छायाचित्र (फोटो) उसको भेज दें और लिख दें कि वह इस छायाचित्रको ही आपकी साक्षात् प्राणमयी मूर्ति मानकर उसीकी चरणधूलि और चरणोदक ले लिया करे। ऐसा करनेसे वह साक्षात् आपसे ले रहा है, यही समझा जायगा और यदि आप उसे रोगमुक्त करना चाहते हैं तो यह भी लिख सकते हैं कि 'मैंने तुम्हारे पूर्वजन्मके अपराधको क्षमा कर दिया है, मैं चाहता हूँ कि तुम रोगमुक्त हो जाओ।'

स्वामीजीका पत्र मिलनेपर डॉक्टर साहबने उसको एक छायाचित्र भेजकर यह लिख दिया कि 'तुम इसीको साक्षात् मेरा स्वरूप मानकर चरणरज और चरणोदक ले लिया करो, मैंने तुमको क्षमा कर दिया है।'

इस पत्रके पानेके बाद युवक क्रमशः स्वस्थ होने लगा और कुछ ही समयमें पूर्ण स्वस्थ हो गया। फिर वह स्वयं डॉक्टर साहबके पास गया। डॉक्टरने परीक्षा करके देखा, उसके फेफड़ोंमें कोई दोष नहीं है। शरीरसे भी खूब स्वस्थ और सबल है। वह एक दिन रहा और डॉक्टर साहबका चरणोदक पीकर तथा चरणरज लेकर चला गया।

मनन करने योग्य

पुण्यात्माओंके संसर्गका फल

'मैंने जीवनपर्यन्त पाप-ही-पाप किये हैं—रस, कम्बल और चमड़ेके व्यापारसे ही जीविका चलायी, जिसको लोग अच्छा काम नहीं समझते। मदिरापान, वेश्यागमन, मिथ्या-भाषणमेंसे मैंने किसीको भी नहीं छोड़ा।' अवन्तीपुरीका रहनेवाला धनेश्वर ब्राह्मण इस प्रकारकी अनेक बातोंका चिन्तन करता हुआ अपने पथपर बढ़ रहा था। वह सामान खरीदने-बेचनेके लिये माहिष्मती जा रहा था।

माहिष्मती आ गयी। परम पवित्र भगवती नर्मदाकी स्वच्छ तरंगें माहिष्मतीकी प्राचीर चूमकर उसकी पवित्रता बढ़ा रही थीं। ऐसा लगता था मानो अमरकण्टक पर्वतपर तप करनेके बाद सिद्धियोंने माहिष्मतीमें ही निवास करनेका विचार किया हो। इस तीर्थमें कहीं वेदमन्त्रोंका उच्चारण हो रहा था, कहीं बड़े-बड़े यज्ञ हो रहे थे; पुराण-श्रवणका क्रम चल रहा था; स्नान, ध्यान-पूजनमें लोग तत्पर थे तो कहीं भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये नृत्य-गान आदि उत्सव भी विधिपूर्वक सम्पन्न हो रहे थे। नदीके तटपर वैष्णवजन कहीं दान-पुण्य कर रहे थे तो कहीं बड़े-बड़े व्रत-अनुष्ठान भी दर्शनीय थे। धनेश्वरको माहिष्मतीमें निवास करते एक मास पूरा हो रहा था, वह घूम-घूमकर शुभ कृत्योंका दर्शन करता था।

'आह!' एक दिन नदी-तटपर घूमते समय उसके मुखसे सहसा निकल पड़ा। वह मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे काले साँपने काट लिया था। अगणित लोग एकत्र हो गये। उसकी चेतना लौटानेके लिये वैष्णवोंने तुलसीदल-मिश्रित जलका उसके मुखपर छींटा दिया, श्रीविष्णुका नाम सुनाया, द्वादशाक्षर मन्त्रका उच्चारण किया; पर उसके शरीरमें प्राणका संचार न हो सका।

× × ×

संयमनीपुरीमें पहुँचनेपर धनेश्वरके लिये कड़ी-से-कड़ी यातनाका विधान सोचा गया। यमदूत उसे मुद्गरसे मारने लगे।

'इसने पृथ्वीपर एक भी पुण्य नहीं किया है, महाराज! यह महान् पापी है।' चित्रगुप्तने यमराजका ध्यान आकृष्ट किया; धनेश्वर कुम्भीपाक नरकमें खौलते तेलकी कड़ाहीमें डाल दिया गया। उसके गिरते ही तेल ठण्डा हो गया।

'संयमनीपुरीकी यह पहली आश्चर्यमयी घटना है, महाराज!' प्रेतराजने विस्मित दृष्टिसे यमराजको देखा।

'इसमें आश्चर्य करनेकी आवश्यकता ही नहीं है; धनेश्वरने एक मासतक वैष्णवोंके सम्पर्कमें माहिष्मतीमें निवासकर अनेक पुण्य कमाये हैं; व्रत-अनुष्ठान, दान, नृत्य, संगीत, कथा-वार्ता आदिसे इसका मन पवित्र है; इसके पहले पाप नष्ट हो गये हैं।' वीणा बजाते हुए देवर्षि नारद आ पहुँचे। यम और प्रेतराज—दोनोंने उनकी चरण-वन्दना की।

'यह यक्षयोनि पानेका अधिकारी है; इसके लिये नरक-यातनाकी आवश्यकता नहीं है, केवल नरक-दर्शनसे ही काम चल जायगा।' नारद चले गये।

प्रेतराजने धनेश्वरको तप्तवालुका, अन्धतामिस्र, क्रकच, असिपत्रवन, अर्गला, कूटशाल्मली, रक्तपूय और कुम्भीपाक नरकका दर्शन कराया। उसने यक्षयोनि पायी। [पद्मपुराण]

गीताप्रेससे प्रकाशित श्रीमद्भागवतमहापुराणके दो उत्कृष्ट प्रकाशन
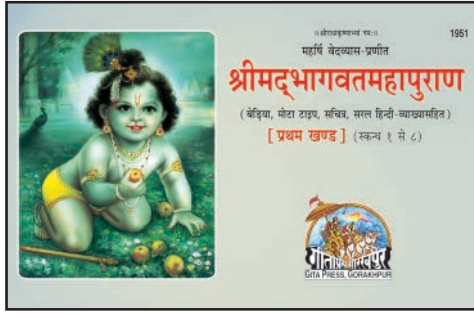
श्रीमद्भागवतमहापुराण—बेड़िआ, सटीक, सजिल्द, मोटा टाइप—श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मयका मुकुटमणि एवं साक्षात् भगवान्का स्वरूप है। भगवान् शुकदेवद्वारा महाराज परीक्षित्को सुनाया गया भक्तिमार्गका तो मानो सोपान ही है। इसके प्रत्येक श्लोकमें श्रीकृष्ण-प्रेमकी सुगन्धि है। इसीसे भक्त-भागवतगण भगवद्भावनासे श्रद्धापूर्वक इसकी पूजा-आराधना किया करते हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीकको पत्राकारकी तरह बेड़िआ ग्रन्थाकार, मोटा टाइपमें हिन्दी-अनुवाद, पूजन-विधि, भागवत-माहात्म्य, आरती, पाठके विभिन्न प्रयोगोंके साथ दो खण्डोंमें—प्रथम खण्डमें स्कन्ध १ से ८ तक और द्वितीय खण्डमें स्कन्ध ९ से १२ तक—प्रकाशित किया गया है, जिससे भागवतका पाठ करनेवालोंको विशेष सुविधा होगी। व्यास-पीठपर भी इसको प्रतिस्थापित किया जा सकता है। (**कोड 1951-1952**) दो खण्डोंमें सेट। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹८००
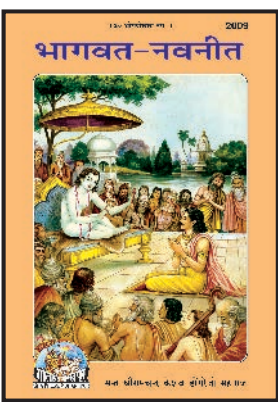
भागवत नवनीत-(कोड 2009) ग्रन्थाकार—प्रस्तुत ग्रन्थ **संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी** महाराजके द्वारा प्रवचनके रूपमें प्रस्तुत सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत-कथाओंका अद्भुत संकलन है। श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण जीवन-दर्शन एवं जीवन-जगत्की सम्पूर्ण समस्याओंका उत्कृष्ट समाधान है। इसमें विविध कथाएँ हैं। भगवान् कृष्णकी रसमयी, माधुर्यमयी, ऐश्वर्यमयी एवं रहस्यमयी दिव्य लीलाएँ हैं। भागवतमें भगवान्के भक्तोंके जीवन-चरित हैं। इन भक्तोंके जीवनके अनुभव, अनुभूतियाँ और विचार जो हमें जीवनके प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रदान करते हैं एवं हमारे अन्दर भक्तिभाव जाग्रत् करते हैं। इस ग्रन्थका स्वाध्याय मनुष्यको एक दिव्य जीवन-दर्शन, शान्ति एवं आनन्द प्रदान करता है। (**कोड 2031**) मूल्य ₹१६०, गुजराती भी।

बृहदाकार साइजमें उपलब्ध ग्रन्थ

कोड	ग्रन्थ	मूल्य	कोड	ग्रन्थ	मूल्य
1907	**श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण**—केवल हिन्दी	४५०	1	**गीता-तत्त्व-विवेचनी**—हिन्दी-टीका	२५०
1389	**श्रीरामचरितमानस**—टीकासहित, वि० सं०	६००	5	**गीता-साधक-संजीवनी**—हिन्दी-टीका	४५०
1436	**श्रीरामचरितमानस**—केवल मूल	२५०	25	**श्रीशुकसुधासागर**—केवल हिन्दी	५००
80	**श्रीरामचरितमानस**—टीकासहित	५००		व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—273005**	

कल्याण-ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

'कल्याण' के वर्तमान वर्षके विशेषाङ्क **'गंगा-अङ्क'** की कुछ ही प्रतियाँ [मासिक अङ्कोंके साथ] उपलब्ध रह गयी हैं। अतः यदि किसीको ग्राहक बनाना चाहें या उपहारमें भिजवाना चाहें तो रकम भेजनेके साथ पूरा पता [पिनकोड एवं मोबाइल नम्बर सहित] आर्डरके साथ प्रेषित करें। वी.पी.पी. से भी नया ग्राहक बननेकी सुविधा उपलब्ध है।

वार्षिक-शुल्क— ₹२००, ₹२२० (सजिल्द)। पञ्चवर्षीय-शुल्क— ₹१०००, ₹११०० (सजिल्द)

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

प्र० ति० २०-५-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित रंगीन चित्र-कथाएँ

[बायें पृष्ठपर चित्र तथा दाहिने पृष्ठपर कथा]

कोड 869 ₹ १५
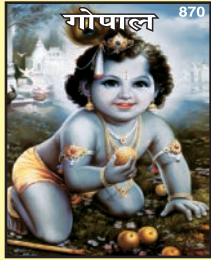
कोड 870 ₹ १५
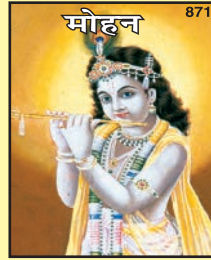
कोड 871 ₹ १५
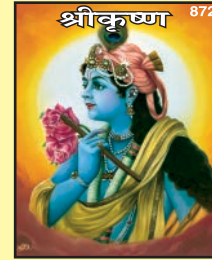
कोड 872 ₹ १५
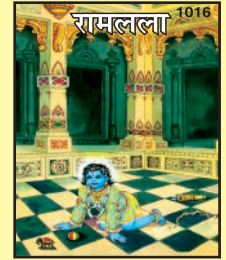
कोड 1016 ₹ २५

कोड 1017 ₹ २५

कोड 1116 ₹ २५
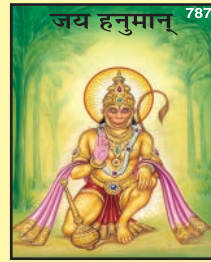
कोड 787 ₹ २५
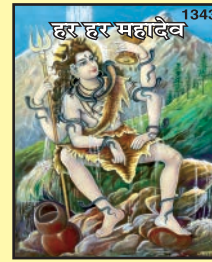
कोड 1343 ₹ २५
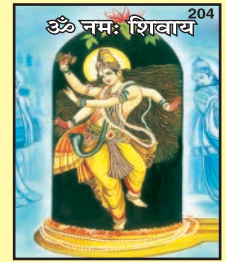
कोड 204 ₹ २५
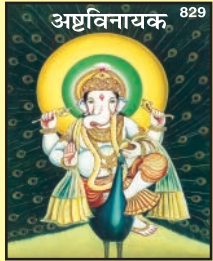
कोड 829 ₹ १५
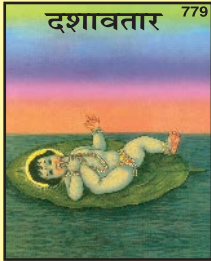
कोड 779 ₹ १५
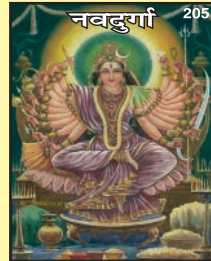
कोड 205 ₹ १५

कोड 1647 ₹ २५
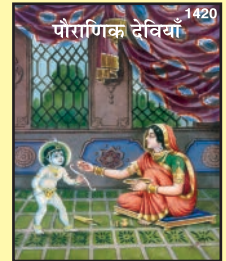
कोड 1420 ₹ १५
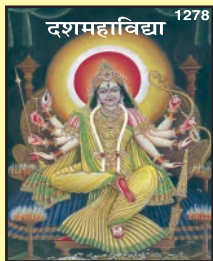
कोड 1278 ₹ १५

कोड 1442 ₹ २५
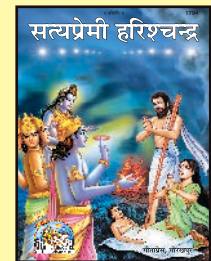
कोड 1794 ₹ २५
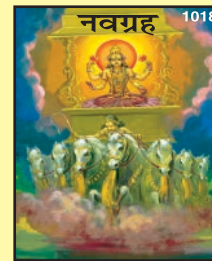
कोड 1018 ₹ १५
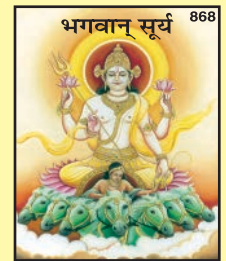
कोड 868 ₹ २५

कोड 1443 ₹ २५
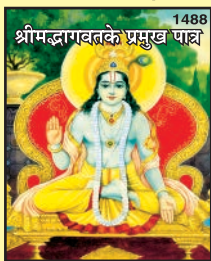
कोड 1488 ₹ २५
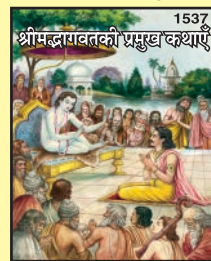
कोड 1537 ₹ २५

कोड 1538 ₹ २५

कोड 1646 ₹ २५